ओ३म्

वैदिक संस्कृति का उद्घोषक

वैदिक सार्वदेशिक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली का साप्ताहिक मुख-पत्र

शुल्क :- एक प्रति 5 रुपया (भारत में) वार्षिक 250 रुपये तथा आजीवन 2500 रुपये

वर्ष 14 अंक 7 कुल पृष्ठ-12 1 से 7 नवम्बर, 2018 दयानन्दाब्द 194 सृष्टि सम्वत् 1960853119 सम्वत् 2075 आ.शु.-07

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के प्रति स्वामी श्रद्धानन्द जी के हृदय के उद्‌गार

निम्न उद्‌गार स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी आत्मकथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' में महर्षि दयानन्द सरस्वती – जिनका उनके जीवन निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान था को समर्पित करते हुए व्यक्त किये थे।

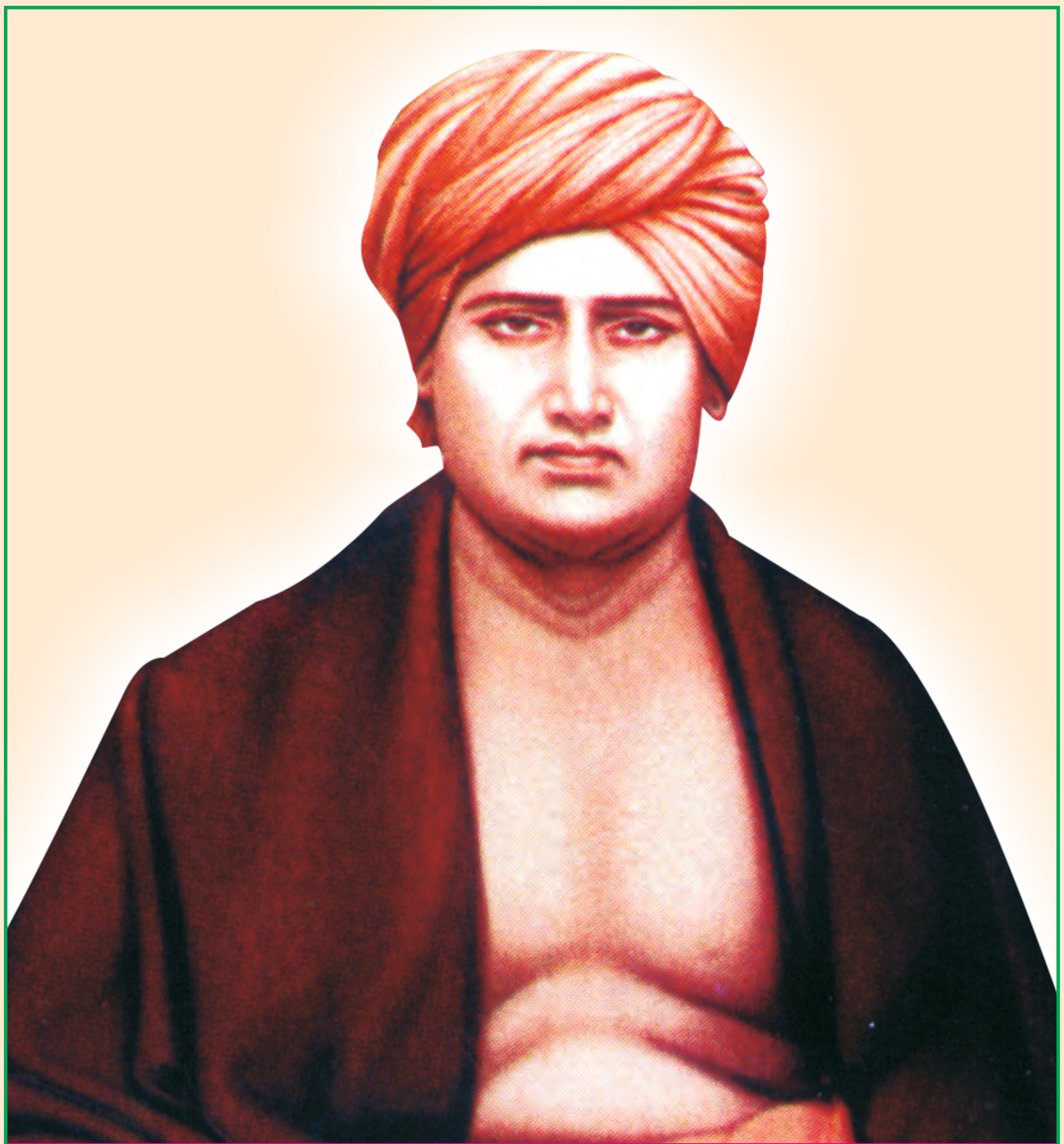

ओ तुंग हिमालय शृंग तुल्य उज्ज्वल महान्, गम्भीर परम पावन चरित्र गंगा समान।
ओ ब्रह्मचर्य साकार, दिव्य जीवन अनूप, पाखण्ड दम्भ के लिए उग्र विद्रोह रूप।
ओ तेजस्वी, ओ क्रान्तदर्शी ओ सत्यकाम, युग पुरुष हमारा युग-युग तक तुमको प्रणाम।

– रामधारी सिंह 'दिनकर'

ऋषिवर! तुम्हें भौतिक शरीर त्यागे 41 वर्ष हो चुके, परन्तु तुम्हारी दिव्य मूर्ति मेरे हृदय पट पर अब तक ज्यों की त्यों अंकित है। मेरे निर्बल हृदय के अतिरिक्त कौन मरणधर्मा मुनष्य जान सकता है कि कितनी बार गिरते–गिरते तुम्हारे स्मरण मात्र ने मेरी आत्मिक रक्षा की है। तुमने कितनी गिरी हुई आत्माओं की काया पलट दी, इसकी गणना कौन मनुष्य कर सकता है। परमात्मा के बिना, जिनकी पवित्र गोद में तुम इस समय विचर रहे हो, कौन कह सकता है कि तुम्हारे उपदेशों से निकली हुई अग्नि में संसार में प्रचलित कितने पापों को दग्ध कर दिया है? परन्तु अपने विषय में मैं कह सकता हूँ कि तुम्हारे सहवास ने मुझे कैसी गिरी हुई अवस्था से उठाकर सच्चा जीवन लाभ करने योग्य बनाया?

मैं क्या था, इसे इस कहानी में मैंने छिपाया नहीं। मैं क्या बन गया और अब क्या हूँ? वह सब तुम्हारी कृपा का ही परिणाम है। इसलिए इससे बढ़कर मेरे पास तुम्हारी जन्म शताब्दी पर अन्य कोई भेंट नहीं हो सकती कि तुम्हारा दिया आत्मिक जीवन तुम्हें ही अर्पण करूँ। तुम वाणी द्वारा प्रचार करने वाले केवल तत्त्ववेत्ता ही न थे, परन्तु जिन सच्चाईयों का तुम संसार में प्रसार करना चाहते थे उनको क्रिया में लाकर सिद्ध कर देना भी तुम्हारा ही काम था। भगवान् कृष्ण की तरह तुम्हारे लिए भी तीनों लोकों में कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह गया था, परन्तु तुमने भी मानव संसार को सीधा मार्ग दिखलाने के लिए कर्म की उपेक्षा नहीं की।

भगवन्! मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, उस ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ। इसलिए जिस परमपिता की असीम गोद में तुम परमानन्द का अनुभव कर रहे हो, उसी से प्राथर्ना करता हूँ कि मुझे तुम्हारा सच्चा शिष्य बनने की शक्ति प्रदान करें। ●

सम्पादक - प्रो. विट्ठलराव आर्य

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के नींव धारक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

– आचार्य भगवानदेव 'चैतन्य'

आर्य समाज एक अमर क्रांति का नाम है। एक ऐसी क्रांति जिसने अपने परिवर्तनशील प्रवाह से एक नई चेतना और दिव्य आलोक बिखेर दिया। यह एक ऐसी आग है, जिसमें किसी प्रकार की जलन और तपन नहीं बल्कि उत्साह, उमंग एवं अविरल गतिशीलता है। उसके संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जन्मजात क्रांतिकारी थे। उनकी क्रांति संकुचित नहीं, बल्कि अपने भीतर बहुआयामों को समाविष्ट किए हुए थी। उनकी क्रांति के स्रोत बहुमुखी थे। उनका ओज, तेज और ज्ञान स्वयं उसकी महत्ता का साक्षीथा। उन्होंने बचपन से ही झूठ, छल–कपट और समाज की जर्जर मान्यताओं से संघर्ष किया। जड़ता से चेतनता की ओर उनका अभियान उसी समय आरम्भ हो गया था जब वह अभी मात्र 12 वर्ष के ही थे। वह उसी अल्पवय से समाज की सब गली–सड़ी परम्पराओं के प्रति विद्रोही हो उठे थे। झूठे शिव को त्यागकर सच्चे शिव को प्राप्त करने का संकल्प भी उनकी क्रांति का ही एक हिस्सा था। आजीवन कठिन से कठिन बाधाओं और मुसीबतों से जूझकर अन्ततः मृत्यु को अंगूठा दिखाकर अमरत्व का आलिंगन करने वाला यह अद्भुत महामानव अपनी मिसाल आप ही थे। सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक आडम्बरों, पोंगापन्थियों से जिस साहस और दृढ़ता से यह सत्य के उपासक जा टकराए वह अद्वितीय और अभूतपूर्व है। यही नहीं, प्यारे राष्ट्र को परतन्त्रता की कठोर बेड़ियों से जकड़ा हुआ देखकर तो दयानन्द मानो क्रांति के एक दहकते अंगारे ही बन गए। राष्ट्रप्रेम की यह अप्रतिम भावना अपने ग्रन्थों और दिये प्रवचनों से स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है। सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की नींव इसी क्रांतिकारी ने अपने उत्कट साहस से रखी थी। यही नहीं उसे सफलता तक ले जाने के लिए अपनी सक्रिय भूमिका भी निभाई थी, मगर निश्चित तिथि से पूर्व ही प्रस्फुटित हो जाने और अपने ही देश के कुछ गद्दारों के विश्वासघात के कारण यह संग्राम सफलता का मस्तक नहीं चूम सका, फिर भी दयानन्द इससे हताश और निराश नहीं हुए बल्कि स्वतंत्रता की लड़ाई का नींव और भी अधिक गहरी रखने के प्रयास में जुट गए। उन्होंने गहराई से उन कारणों पर मनन और चिन्तन किया, जिसके कारण यह संग्राम अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सका और उन कारणों को दूर करने के लिए कार्यक्षेत्र में दुगने उत्साह से उतर गये।

स्वदेशी राज्य सर्वोपरि उत्तम

उनके हृदय में राष्ट्र के प्रति अथाह प्रेम था, तभी तो सन् 1872 में भारत के तत्कालीन वायसराय नार्थ ब्रुक के मुंह पर ही इस फकीर ने कह दिया था, मैं नित्य प्रातः–सायं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि मेरा देश पराई दासता से मुक्त हो। अपने विश्वविख्यात ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' के 8वें समुल्लास में उन्होंने लिखा ' .... कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।' इसी ग्रन्थ में वह कहते हैं – माता–पिता के समान कृपा न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'आर्याभिविनय' में वेदमंत्रों के माध्यम से स्थान–स्थान पर अद्भुत प्रार्थनाएँ की जो उनकी देशभक्ति की उत्कट भावनाएँ प्रकट करती हैं। कहते हैं कि चन्द्रशेखर आजाद तब तक अन्न ग्रहण नहीं करते हैं थे जब तक इस ग्रन्थ के किसी एक मन्त्र का स्वाध्याय नहीं कर लेते थे। उनका यह ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश से भी पहले की रचना है। इसी ग्रन्थ में वह एक स्थान पर कहते हैं – 'विदेशी राज्य हमारे देश पर कभी शासन न करें।' लोकमान्य जी का कथन है – **दयानन्द स्वराज्य शब्द के प्रथम सन्देशवाहक थे।** मदनमोहन मालवीय जी का कथन है – **'वह भारत को स्वतन्त्र तथा दिव्य देखना चाहते हैं'** इसी स्वतंत्रता और दिव्यता की विधिवत प्राप्ति के लिए उन्होंने 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज ने चारों ओर चेतनता और नवजागरण की ऐसी धूम मचाई कि एक अमेरिकी विद्वान कह उठा – **'मैं एक धधकती ज्वाला को देख रहा हूँ। अनन्त प्रेम की अनन्त ज्वाला जो समस्त द्वेष दावानल को भस्मसात् कर देगी।** इस धधकती ज्वाला का नाम है – **आर्य समाज।** महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने उस समय स्वतन्त्रता प्राप्ति की सिंह गर्जना की थी, जब समस्त भारतीय समुदाय आलस्य और भय की गहरी नींद में सोया हुआ था।

जंजीरों से जकड़े देश को राह दिखाई थी तूने,
जिसको न काल भी बुझा सके वह शमां जलाई थी तूने।
घनघोर तिमिर के आंगन में तू बीज उषा के बोता था,
आवाज लगाई थी तूने जब सारा भारत सोता था।

सच्चे आर्य समाजी को तो देशभक्त की भावना मानो घुट्टी में ही मिल जाती थी इसलिए आर्य समाज क्रांतिकारियों का पर्यायवाची बन गया। अंग्रेज सरकार के तत्कालीन (1911) जनसंख्या अध्यक्ष मिस्टर ब्लण्ट ने आर्य समाज पर टिप्पणी करते हुए लिखा था – **'आर्य समाज के सिद्धान्तों में देशभक्ति की प्रेरणा है। आर्य सिद्धान्त और आर्य शिक्षा समानरूप से प्राचीन भारत के गीत गाते हैं और ऐसा करके अपने अनुयायिओं में राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना जगाते हैं।** एक अन्य अंग्रेज के शब्दों में – **'किसी भी आर्य समाजी की खाल को खुरचकर देखो तो अन्दर छिपा हुआ क्रांतिकारी देशभक्त दयानन्द दिखाई देगा।'** सचमुच में ही आर्य समाज क्रांतिकारियों का स्रोत बन गया। **श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, लाला हरदयाल, भाई परमानन्द, भाई बालमुकुन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, वीर सावरकर, मदन लाल ढींगरा, सरदार भगतसिंह, पण्डित कांशीराम, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खां, रोशन सिंह लाहड़ी तथा चन्द्रशेखर आजाद** जैसे सैकड़ों वीर भारत माँ की बेड़ियों को छिन्न–भिन्न करने के लिए अपने प्राण हथेली पर लेकर निकल पड़े। इन सभी क्रांतिकारियों का प्रेरणास्रोत मूलतः आर्य समाज ही था। इसलिए आर्य समाज पर अंग्रेज प्रशासन की हमेशा कुदृष्टि बनी रहती थी। यहाँ तक कि आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों में अंग्रेज गुप्तचर बैठे रहते थे। आर्य समाज को अनेक प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ी मगर नर्म और गर्म दोनों ही दलों में यह अपनी सक्रिय भूमिका निभाता रहा। कांग्रेस के इतिहास में डॉ. पट्टाभि सीतारमैया लिखते हैं – **'स्वतंत्रता संग्राम में 80 प्रतिशत से भी अधिक आर्य समाज के लोगों का सहयोग रहा है।'**

आज हम स्वतंत्र तो हो गए हैं, मगर जिस स्वतंत्र भारत की कल्पना हमारे वीर शहीदों ने की थी उसका निर्माण हम आज तक नहीं कर पाये हैं क्योंकि कुछ गद्दीधारी स्वार्थियों ने स्वतंत्रता का प्रसाद जन–साधारण तक नहीं पहुँचने दिया बल्कि अपनी मुट्ठियों में बन्द कर दिया –

वो कफन चुराकर बैठ गए जा महलों में,
देखो गाँधी की अर्थी नंगी जाती है,
इस रामराज्य के सुधर रेशमी दामन में,
देखो सीताओं की लाज उतारी जाती है।

आर्य समाज ने अपने बलिदान की कीमत नहीं मांगी, अन्यथा वह भी अपनी रोटियाँ सेंकने के लिए आगे बढ़ सकता था। अपने तप और त्याग का ढिंढोरा नहीं पीटा, जबकि स्वतंत्रता प्राप्ति में उसका सबसे अधिक सहयोग रहा। सुप्रसिद्ध नेताओं के ये हार्दिक उद्गार आर्य समाज के कार्य की मुँह बोलती तस्वीर है। श्रीमती एनीबेसेन्ट ने लिखा है – **'महर्षि दयानन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारत, भारतीयों के लिए का नारा लगाया।'** राजा महेन्द्र प्रताप कहते हैं – **'आर्य समाज क्रांतिकारियों की संस्था है। इसके सदस्यों में देशप्रोम की भावना है।'** सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन का कथन है – **'स्वामी जी ने स्वराज्य का सबसे पहले सन्देश दिया था।'** लाल बहादुर शास्त्री जी ने कहा – **'महर्षि दयानन्द महान राष्ट्रनायक नेता और क्रांतिकारी महापुरुष थे और उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में अभूतपर्वू कार्य किया।'** दादा भाई नौरोजी कहते हैं – **'मुझे स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों से स्वराज्य की लड़ाई में बड़ी प्रेरणा मिली।'** महाराष्ट्र के नेता एन.वी. गाडगिल का कहना है – **'महाराष्ट्र में जो स्थान छत्रपति शिवाजी अथवा समर्थ गुरु रामदास का है, वही स्थान भारत के राष्ट्रीय उत्थान में महर्षि दयानन्द का है।'**

वास्तव में कांग्रेस ने भी कालान्तर में जिन कार्यों को स्वतंत्रता संग्राम का आधार बनाया उनकी घोषणा महर्षि दयानन्द जी पहले ही कर चुके थे। सरदार बल्लभभाई पटेल के शब्दों में – **'मेरी दृष्टि में वह सच्चे राजनीतिज्ञ थे। 40 वर्षों में कांग्रेस का जो कार्यक्रम रहा है वे सब कार्य 60 वर्ष पूर्व स्वामी दयानन्द ने देश के लिए रखे थे। सारे देश में एक भाषा, खादी, दलितोद्धार, स्वराज्य की घोषणा आदि सब** दयानन्द ने देश को दिए वास्तव में वह ही भारत की स्वाधीनता की नींव रखने वाले थे। तभी तो भूतपूर्व लोकसभा अध्यक्ष अनन्त शयनम् आयंगर ने कहा था कि – **'गाँधी जी राष्ट्र के पिता थे तो महर्षि दयानन्द राष्ट्र के पितामह थे।** महर्षि हमारी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों और स्वतंत्रता आन्दोलन के आद्यप्रर्वतक थे। महर्षि जी के अप्रतिम योगदान को देखते हुए डॉ. एनी बेसेन्ट ने तो यहाँ तक कहा – **'जब स्वाधीन भारत का मन्दिर बनेगा, तो उसमें स्वामी दयानन्द की मूर्ति की वेदी सबसे ऊँची होगी।'**

आज जबकि समूचा राष्ट्र पुनः बिखरने के कगार पर खड़ा है। जातिवाद और सम्प्रदायवाद का जहर गाँव–गाँव तक पहुँच गया है। मजहबी कोढ़ ने गली–गली को अपनी सड़ान्ध से दूषित कर दिया है, हमें पुनः राष्ट्रीय प्रवृत्तियों और स्वतंत्रता के आद्यप्रर्वतक महर्षि दयानन्द तथा आर्य समाज की शिक्षाओं की ओर लौटना पड़ेगा। यही असम्प्रदायिक विचारधारा हमें आज इस संकट से उबार सकती है। मार–काट और खून–खराबे के राक्षसी बादल पुनः मण्डरा रहे हैं। स्वार्थी जनून का काला आवरण हमें अपनी चपेट में लेने के लिए आगे बढ़ रहा है। इसे महर्षि जी की मानवतावादी विचारधारा से विदीर्ण करना होगा तभी राष्ट्रीय अस्मिता और हमारी संस्कृति एवं स्वतंत्रता सुरक्षित रह सकती है अन्यथा अपनी इस गफलत का हमें बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ेगा –

वक्त की फिक्र कर नादान मुसीबत आने वाली है,
तेरी बर्बादियों के मशविरे हैं आसमानों में।
न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ हिन्दोस्तां वालों,
तुम्हारी दास्तां तक भी नहीं होगी दास्तानों में।।

– 81/एस–4, सुन्दरनगर कालोनी,
जिला–मण्डी, हिमाचल प्रदेश–174402

साम्प्रदायिकता और जातिवाद के सन्दर्भ में स्वामी दयानन्द का दृष्टिकोण

- डॉ० ज्वलन्त कुमार शास्त्री

स्वामी दयानन्द को सर्वदा इस बात का गर्व रहा कि उनका जन्म आर्यावर्त देश में हुआ किन्तु सत्यासत्य और मानव कल्याण की दृष्टि से उन्होंने किसी देश विशेष के साथ पक्षपात नहीं किया। स्वामी दयानन्द के अनुसार आर्यों से पूर्व इस देश में कोई मनुष्य बसता नहीं था। प्रथम मानवीय सृष्टि हिमालय की गोदी में हुई। आबादी बढ़ने के बाद वे मैदानी इलाकों में उतरे और वे सरस्वती तथा दृषद्वती नदियों से सिंचित प्रदेशों में बस गये। इस देश का नाम ''आर्यावर्त'' रखा। युगों तक वैदिक धर्म और वैदिक संस्कृति का बोलवाला रहा। महाभारत काल के बाद आर्यों के गौरव और उत्थान का यवनिका पतन हो गया क्योंकि महाभारत का समय आर्यों के अत्यन्त अधः पतन का समय बन गया था।

महाभारत का युद्ध परस्पर की कलह, द्वेष और दुराग्रह का युग है। श्री कृष्ण जी के सहयोग से भी यह युद्ध टल न सका। तब जो विनाश हुआ है उससे आज तक भारतवर्ष पनप नहीं पाया। वर्णाश्रम धर्म जो एकसूत्रता के लिये थे, विघटन के कारण बने। मन्दिर बने; अवतार बने, पुजारी और महन्त बने, सम्प्रदाय बने, हम पतित और विघटित होते चले गये। विदेशियों के आक्रमणों ने देश को सभी प्रकार से खण्डित कर डाला। पिछले १००० वर्षों में बाहर से जो आक्रामक आये वे पैगम्बर धर्म लेकर आये। देश में नई समस्यायें उत्पन्न हो गईं और आर्यावर्त देश हर बात में पिछड़ गया। सम्प्रदायवाद ने अनैतिकता की नींव डाली और देश के लोग व्यापार में, धर्म–कर्म में और शासन में भी एक दूसरे को छलने और ठगने लग गये। स्वामी दयानन्द पुनर्जागरण युग के, आधुनिक भारतीय इतिहास के प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने आर्यावर्त की इस दुर्गति को समझने का प्रयास किया और हमें राष्ट्रीयता का नया आलोक दिया।

नये युग के द्रष्टा

उन्नीसवीं शती के भारत की पूरी परिस्थिति को सामने रखा जाये तो एक ओर हिन्दू समाज की विश्रृंखलता और मूल्यों के क्षेत्र में व्यक्तिनिष्ठा का प्राधान्य था; तो दूसरी ओर इस्लाम कुछ शताब्दियों तक विजेताओं और शासकों का धर्म रहने के कारण अपनी पराभूत अवस्था में भी हिन्दू समाज से अंग्रेजों की विदेशी शक्ति के विरुद्ध मिलने की मानसिकता नहीं रखता था। अंग्रेजों ने आगे इसका लाभ ही नहीं उठाया, वरन् इस अलगाव को गहरे विरोध में परिणत किया। ईसाई– धर्म शासकों के संरक्षण में हिन्दू समाज की कमजोरियों का लाभ उठा रहा था। इस समय हिन्दू समाज निहित स्वार्थ के व्यक्तियों और वर्गों से हर तरह पीड़ित और शोषित था; अन्य धर्मों के सामने असुरक्षित भी। छूत; वर्ण व्यवस्था का अत्यन्त विकृत रूप, मन्दिरों, तीर्थों में पाखण्ड और ठगी, कुरीतियाँ आदि हिन्दू समाज में व्यापक रूप में छा गये थे। चारों ओर नैतिक मूल्यों की अवहेलना हो रही थी, समाज का मानवीय मूल्यों का आधार समाप्त हो चुका था। ऐसा मूल्यविहीन; विश्रृंखलित और विघटित हिन्दू समाज राजनीतिक तथा आर्थिक स्तर पर विदेशी शासक के सामने टिक नहीं सकता था, फलतः कमजोर होता गया। अंग्रेज हिन्दुओं के पाखण्ड और मुसलमानों की स्वार्थपरता का लाभ उठाकर अपनी शक्ति और प्रभाव को बढ़ाते गये।

स्वामी दयानन्द में भारतीय हिन्दू समाज की जड़ता और विकृतियों की पहचान सहज भाव से उत्पन्न हुई। शिवलिंग पर दौड़ते हुए चूहों से उस बालक के मन में जो कुछ घटित हुआ, वह साधारण नहीं था। भारतीय समाज के अन्दर सैकड़ों वर्षों से जमती हुई जड़ता इस प्रकार उस द्रष्टा के मन में कौंध गई। फिर वह उस परिवेश से मुक्त होकर सत्य की खोज के लिए निकल पड़ा। उसके सामने दूसरा विकल्प नहीं था। वर्षों तक उसे सत्य के अनुसंधान के लिए भटकना पड़ा। नदी–नाले, घाटी–दर्रे, पर्वत–शिखर चारों ओर भटकता रहा, पण्डितों से शास्त्रों का अध्ययन किया, योगियों से उसने योग सीखा। पर उसके सामने एक ही लक्ष्य था–भारतीय हिन्दू समाज को इस अंधकार से प्रकाश में किस प्रकार लाया जाए। कुरीतियों, कुसंस्कारों, जड़ताओं, अंधविश्वासों से कैसे मुक्त किया जाए? यह लक्ष्य उनके सामने से कभी ओझल नहीं हुआ।

अन्ततः स्वामी विरजानन्द के पास उसने अध्ययन किया। गुरु–शिष्य ने एक दूसरे को पहचाना जैसे दोनों को एक दूसरे की तलाश थी। शिष्य शास्त्रों के अध्ययन के बाद गुरु की दक्षिणा देने के लिए प्रस्तुत हुआ। गुरु ने दक्षिणा मांगी–जाओ सत्य का प्रचार करो और अन्धकार दूर कर अपने समाज की सेवा करो। शिष्य निकल पड़ा, उसने जीवन भर गुरु दक्षिणा चुकाई। स्वामी दयानन्द का व्यक्तित्व खण्डन–मण्डन प्रधान जान पड़ता है, क्योंकि ऐसा प्रक्षेपित किया गया है। पर यह सही नहीं है। अंध विश्वास, पाखण्ड, कुसंस्कार, स्वार्थपरता के अधिकार को दूर करने के लिये यह मार्ग अपनाना अनिवार्य था। इसी प्रकार दूसरे धर्मों की जड़ताओं और अंध विश्वासों को भी उजागर करना जरूरी था, तभी समाज का स्वस्थ और गतिशील निर्माण सम्भव हो सकता था।

धर्म और सम्प्रदाय की अवधारणा :–

स्वामी दयानन्द ने 'आर्यसमाज' की कल्पना की। यह उनकी सूक्ष्म दृष्टि का परिणाम है। उन्होंने इसे 'आर्य धर्म' नहीं कहा, पारम्परिक हिन्दू समाज से अलग होकर सम्प्रदाय या धर्म के नाम पर 'आर्यसमाज' को चलाने की चेष्टा नहीं की। उनका उद्देश्य पूरे भारतीय समाज को एक सांस्कृतिक ऐतिहासिक धारावाहिक इकाई के रूप में परिभाषित और संगठित करने का था। साथ ही उनका प्रयत्न था कि यह समाज कुसंस्कारों से, जड़ताओं से, मिथ्या कर्म काण्डों से मुक्त होकर शुद्ध मानवीय मूल्यों के आधार पर गतिशील हो। यहां स्वामी जी 'आर्य' शब्द को जाति अथवा धर्मवाचक न मानकर श्रेष्ठतावाची मानते हैं और उनके अनुसार जो भी श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों का आचरण करता है;

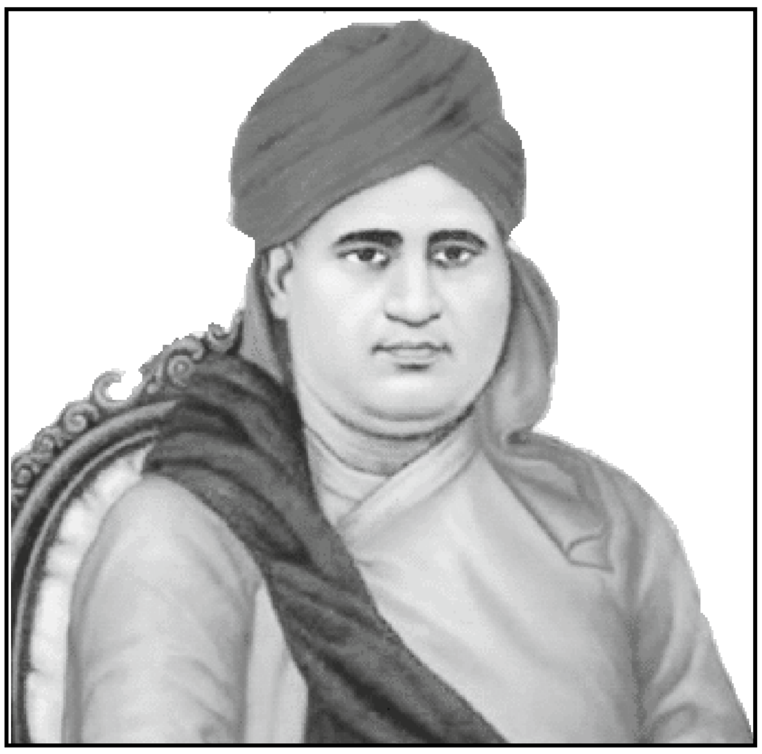

वह आर्य है:– उन्होंने जाति; वर्ण; धर्म के परे ऐसे समाज की कल्पना की जो इन मूल्यों का जीवन बिताने के लिये प्रयत्नशील हो।

उन्होंने यह अनुभव किया होगा कि जब–जब समाज को मूल्योन्मुखी करने का प्रयत्न किसी विशेष संगठन के नाम पर किया जाता है तो आगे चलकर नामधारी धर्म या सम्प्रदाय प्रमुख हो जाता है और मूल्य गौण हो जाते हैं, यहां तक कि वे विकृत और भ्रष्ट हो जाते हैं। स्वामी जी ने इसी कारण अपने आन्दोलन को ऐसा नाम नहीं दिया। यही नहीं उन्होंने वैदिक धर्म की व्याख्या की, अपनी समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा को स्थापित करने का प्रयत्न किया तब नाम देने का आग्रह नहीं किया। अपनी व्याख्या में उन्होंने पूरा प्रयत्न किया कि भारतीय धर्म, दर्शन, अध्यात्म के उन तत्वों को उजागर किया जाये जो व्यक्ति और समाज को ऊँचे मूल्यों के स्तर पर प्रतिष्ठित और विकसित करते हैं और ऐसे अंशों, पक्षों और तत्वों को अवैदिक (अर्थात् जो श्रेष्ठ मूल्य परम्परा में नहीं आते) कहकर खंडन किया जो मानवीय मूल्यों के विपरीत पड़ते हैं। यह मूल दृष्टि साधारण व्यक्ति की नहीं है, सूक्ष्म दिव्य सृष्टा की है, जो साधारण अर्थ में सही–गलत, पक्ष–विपक्ष सम्प्रदाय और मत–मतान्तर को स्वीकार नहीं करता वरन् अपने समाज को मानवीय मूल्यों की उच्चस्तरीय भूमिकाओं की ओर प्रेरित करने की दृष्टि से केवल सत्य को ग्रहण करता है।

स्वामी दयानन्द ने वेद और उपनिषदों को स्वीकार किया। उपनिषदों में भी केवल प्राचीन व्याख्या पद्धति अपनाई तथा पुराणों के बृहद साहित्य को प्रमाण की दृष्टि से अस्वीकार कर दिया। धार्मिक और सामाजिक संस्कारों तथा कर्मकाण्डों से एक विशिष्ट वर्ग के रूप में स्वार्थी पुरोहितों को हटा दिया। समाज के द्वारा पूजा पाने वाले और मात्र आशीर्वाद देने वाले साधुओं–संन्यासियों को भी उन्होंने समाज में स्वीकृति नहीं दी, उन पर समाज की सेवा, शिक्षा और उसके उन्नयन का दायित्व रखा अन्यथा अपने गृहस्थ आश्रम के कर्तव्य को निभाने के बाद व्यक्ति को वानप्रस्थ आश्रम में समाज की सेवा और शिक्षा का दायित्व निभाना अपेक्षित है। संन्यास आश्रम में आत्मोन्नयन के साथ व्यक्ति का अपने समाज को उच्चादर्शों की ओर प्रेरित करना कर्तव्य हैं। इन मान्यताओं के पीछे गहराई से देखने पर स्वामी जी को पूरे भारतीय समाज के इतिहास को समझकर भविष्य को देखने वाली सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त है। पुरोहित गृहस्थ के सामाजिक दायित्व और उच्चादर्शों का पथ प्रदर्शक नहीं रह गया था, जो उसका दायित्व था। वह निहित–स्वार्थ होकर एक वर्ग बन गया था। इसने सत्ता की प्रतिद्वंद्विता में कुटिल दांव लगाये। समाज पर प्रभुत्व जमाने के लिए अनेक प्रकार के निरर्थक कर्मकाण्डों को जन्म दिया, नानाविध अन्ध विश्वासों को प्रश्रय दिया। अतः स्वामी जी ने यज्ञ विधान और संस्कार पद्धतियों के लिये सम्मानीय गृहस्थ को, स्त्री या पुरुष को अधिकार प्रदान किया और हर अवसर पर सम्मिलित रूप से कर्तव्यों और मूल्यों के स्मरण करने का विधान किया।

स्वामी दयानन्द ने हिन्दू धर्म (भारतीय धर्म के रूप में) और संस्कृति की सुरक्षा की दृष्टि से और उसके वर्चस्व को स्थापित करने के लिये अन्ध विश्वासों, कुसंस्कारों, कुरीतियों, जड़ताओं पर प्रहार किया। साथ ही दूसरे धर्मों की इसी स्तर पर कड़ी आलोचना की, क्योंकि उनकी मान्यता थी कि धर्म भी कट्टर पन्थ, अन्ध विश्वासी और निहित स्वार्थियों के द्वारा नियंत्रित हैं। ध्यान देने की बात है, वे धर्मों में सामंजस्य स्थापित करने के पक्षधर थे। उन्होंने अन्य धर्मावलम्बियों के नेताओं से इस सम्बन्ध में चर्चाएँ भी कीं। उनका दृष्टिकोण था कि अगर विभिन्न सम्प्रदाय मूल मानवीय धर्म को स्वीकार करके चलें तो वे कुसंस्कारों और जड़ताओं से मुक्त होकर मूल्यों पर प्रतिष्ठित रह सकते हैं और आपसी वैमनस्य से मुक्त हो सकते हैं। पर हर धर्म सम्प्रदाय में निहित स्वार्थी वर्ग इतना प्रबल है कि वह स्वामी जी की दृष्टि को न समझ सकता था और न उनके विचारों को मान सकता था। फलतः अनेक सम्प्रदायों के धर्माचार्य स्वामी जी के सुझाव से सहमत न हो सके। स्वामी जी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समझने के लिए उनके इस पक्ष को दृष्टि में रखना आवश्यक है। उनके व्यक्तित्व की प्रेरणा के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रारम्भ से आर्य समाज को मानने वाले तमाम लोग रहे हैं। उनकी स्वयं की दृष्टि राष्ट्रीय रही है, देश को स्वाधीन करने के बारे में और देश को मूल्यों के स्तर पर उन्नत और संगठित करने के लक्ष्य से भी। स्वामी जी के अनुसार देश में सामाजिक जीवन को संगठित तथा उन्नत मूल्यों पर प्रतिष्ठित करना बहुत आवश्यक है, राष्ट्रीय स्वाधीनता उसके आधार पर प्राप्त करना न केवल आसान है वरन् उसे सुरक्षित रख देश को विकसित करना भी अधिक सरल है।

राष्ट्रीय एकता और मत-मतान्तर

कतिपय बुद्धिजीवियों का आरोप है कि स्वामी दयानन्द द्वारा नानक पन्थ की आलोचना किए जाने से पंजाब में हिन्दू–सिख एकता में दरार पैदा हुई। इस प्रकार के आरोपकर्ता स्वयं में साम्प्रदायिक सोच के व्यक्ति हैं। क्योंकि स्वामी जी ने नानक पन्थ से कहीं अधिक कड़ी भाषा में विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों की खबर ली है। अतः स्वामी जी की सोच में न तो साम्प्रदायिकता है और न ही एकता को भंग करने की (मंशा) आकांक्षा। वे तो भारतीय और अभारतीय दोनों प्रकार के सम्प्रदायों के अन्धविश्वासों, रूढ़ियों तथा पाखण्डों का खण्डन करके बौद्धिक तर्कयुक्त वैज्ञानिक विचार की प्रतिष्ठा चाहते हैं। कबीर, दरिया, नानक आदि मध्य कालीन संतों ने अपने–अपने समय में हिन्दू धर्म के पाखण्डों का तीव्र खण्डन किया है। इस प्रकार के समाज सुधारक संतों का अभिप्राय मानव समुदाय को गलत रास्तों से हटाकर प्रशस्त पथ पर चलने की प्रेरणा देना रहा है। स्वामी जी का स्थान मध्यकालीन संतों तथा दार्शनिक विचारकों से तनिक भी कम नहीं है। अतः उन पर किसी ''सम्प्रदाय विशेष'' का विरोधी होने का आरोप स्वयं में एक निन्दनीय प्रयास है। इस सन्दर्भ में ''कौंसिल आफ साइन्टिफक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च'' के भूतपूर्व महानिदेशक, भारतीय विज्ञान संवर्धन संस्था के अध्यक्ष, देश के गणमान्य वैज्ञानिक स्व० डा० आत्माराम द्वारा स्वामी जी के खण्डन–मण्डन परक व्यक्तित्व तथा कार्य का मूल्यांकन उल्लेखनीय है– ''समय की पुकार है कि समाज में बड़ी गहराई तक व्याप्त अन्धविश्वासों को जड़ से उखाड़ फेंका जाए और स्वामी जी का अन्धविश्वास को दूर करने का संदेश घर–घर पहुंचाया जाए। उनकी एक यही उपलब्धि आइन्सटाइन, गैलीलियो, न्यूटन की उपलब्धियों से

अगले पृष्ठ पर जारी है

पिछले पृष्ठ का शेष

किसी भी तरह कम नहीं। इसमें वैज्ञानिक तत्व है जो सार्वभौम है। स्वामी जी को एक धार्मिक पथद्रष्टा व समाज प्रवर्तक ही समझा जाता है। किन्तु उनका दृष्टिकोण और विचारधारा मूलतः वैज्ञानिक तर्कों पर आधारित थी। मेरे विचार से वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने विज्ञान के आधार पर अन्धविश्वासों पर प्रहार किया और उन्हें दूर करने में बहुत कुछ सफल भी हुए। अन्ध विश्वास का अंधेरा छांटने के लिए स्वामी जी ने बार–बार उन पर प्रकाश डाला है। उन्होंने सभी धर्मों के पाखण्डों पर, पोप–लीलाओं पर, जमकर चोट की है। एक सच्चे वैज्ञानिक की तरह स्वामी जी ने अपने पराये का भेद किये बगैर तमाम धार्मिक विश्वासों पर जमी हुई काई हटाने का पूरा प्रयास किया। भले ही किसी विज्ञानशाला में वे पढ़े न हों, भले ही किसी वैज्ञानिक से दीक्षा न ली हो, भले ही किसी प्रयोगशाला में रिसर्च न की हो, मेरे विचार से स्वामी जी गैलीलियों की अपेक्षा कहीं ऊँचे स्तर के वैज्ञानिक थे। गैलीलियों में वह निर्भीकता नहीं थी, स्वामी जी में वैज्ञानिक दृष्टिकोण कूट–कूट कर भरा हुआ था।''

अनैतिकता और अन्ध विश्वास के साथ समझौता नहीं:-

स्वामी दयानन्द इस युग के इस बात के एक मात्र प्रवर्तक थे, जिन्होंने कहा कि हम सब आपस में बैर भाव को त्याग कर, सत्य वैदिक आस्थाओं को स्वीकार कर सत्य का ग्रहण और असत्य का प्रतिवाद करें। अनैतिकता और अन्ध विश्वासों को मत–मतान्तरों से निकाल दें, तो सभी मनुष्य एक सार्वभौम मंच पर मानव मात्र की सेवा कर सकते हैं।

बीसवीं शती में मनुष्य मात्र का एक गणित है, सबका एक रसायन शास्त्र है, एक प्राणि शास्त्र है, एक भौतिकी और एक शिल्प है। इसी प्रकार वेद और वेदांग के अति प्राचीन युग में ज्ञान–विज्ञान मानव मात्र का एक था। हिन्दू गणित, अरब ज्योतिष, यूनानी तर्क शास्त्र और चीनी या मिश्री तत्वज्ञान ऐसे शब्द मध्ययुग में प्रचलित हुए। अब प्राचीन ऋषियों की परम्परा में विश्व के सभी विद्वान् और तत्वज्ञानी सत्य और ज्ञान को समझने में संकीर्णताओं को छोड़कर सत्य धर्म के सिद्धान्तों में एक हो जायें।

भारत में अन्धविश्वासों के पोषण और समर्थन का काम हिन्दू धर्म के ठेकेदार कर रहे हैं। अन्य देशों में ईसाई और मुसलमान भी इन्हीं अन्धविश्वासों का पोषण और समर्थन कर रहे हैं। आर्यसमाज, महर्षि दयानन्द और आर्षकालीन प्राचीन परम्पराएँ इन मान्यताओं का न तो पोषण करती थीं; न समर्थन। हम तुम्हारे और तुम हमारे असत्यों; अन्धविश्ववासों और अनैतिकताओं का विरोध न करो इस प्रकार के समन्वय की बात करना पतनोन्मुख होना है। आर्य समाज का दृढ़ संकल्प है कि किसी भी स्थिति, देशकाल या अवस्था में किसी के अन्धविश्वास, असत्य और अनैतिकता के साथ वह साझा या समझौता नहीं करेगा।

प्रभु की कला पर, ज्ञान–विज्ञान और सत्य शिल्प पर सब एक हो सकते हैं किन्तु मन्दिर, मस्जिद, गिरजें, कबरें, अवतार, पैगम्बर, मूर्ति और छल कपट पूर्ण चमत्कारों पर एकता नहीं हो सकती। अपने देश में हिन्दुओं को इस बात पर पूरी तरह विचार करने की आवश्यकता है।

आर्य समाज भारतवर्ष में अपने को किसी भी राष्ट्रीय अंग से पृथक नहीं करना चाहता। वह सबका हितैषी है, चाहे वह किसी प्रदेश का क्यों न हों। किन्तु बिना अन्धविश्वासों और रूढ़ियों को तोड़े–बिना परम्परा से चली आ रही रस्म–रिवाजों और आस्थाओं को शुद्ध और पवित्र किये बिना हम अपने राष्ट्र का संघटन नहीं कर सकते। अनैतिक और अन्ध विश्वासी तत्वों के साथ समझौता करने से राष्ट्रीय एकता सम्भव नहीं है।

पिछले १००० वर्ष से भारत में भारतीयों के बीच मुसलमानों का कार्य आरम्भ हुआ। सन् ६०० ई० से लेकर १६०० के बीच में दस करोड़ भारतीय मुसलमान बन गये। अर्थात् १०० वर्ष में एक करोड़ व्यक्ति मुसलमान बनते गये या प्रतिवर्ष १ लाख भारतीय मुसलमान बन रहे थे। पिछले दो सौ वर्षों में भारत में ब्रिटिश राज्य का आधिपत्य होने पर इसी गति से भारतीय हिन्दू ईसाई भी बनने लगे। इस धर्म परिवर्तन का आभास न किसी हिन्दू राजा को हुआ, न किसी धार्मिक हिन्दू नेता को। भारतीय जनता ने अपने समाज के संगठन की समस्या पर इस दृष्टि से कभी सूक्ष्मता से विचार नहीं किया था। पंडितों, विद्वानों, मन्दिर के पुजारियों के सामने यह समस्या राष्ट्रीय दृष्टि से प्रस्तुत ही नहीं हुई।

पिछले १००० वर्ष के इतिहास में स्वामी दयानन्द अकेले ऐसे व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने इस समस्या पर विचार किया। उन्होंने दो समाधान बताए–पहला भारतीय समाज सामाजिक कुरीतियों से आक्रान्त हो गया है और दूसरा समाज का फिर से परिशोध आवश्यक है। भारतीय सम्प्रदायों के कतिपय कलंक हैं, जिन्हे दूर न किया गया, तो यहां की जनता मुसलमान तो बनती ही रही है, आगे तेजी से ईसाई भी बनेगी। हमारे समाज के कतिपय भयंकर कलंक ये थे।

(१) मूर्ति पूजा और अवतारवाद
(२) जन्मना जातिवाद।
(३) अस्पृश्यता या छुआ–छूतवाद।
(४) परम स्वार्थी व भोगी महन्तों, पुजारियों, शंकराचार्यों की गद्दियों का जनता पर आतंक।
(५) जन्मपत्रियों, फलित ज्योतिष, अन्धविश्वासों, तीर्थों और पाखण्डों का भोली–भाली ही नहीं शिक्षित जनता पर भी कुप्रभाव।

राष्ट्र से इन कलंकों को दूर न किया जायेगा, तो विदेशी संप्रदायों का आतंक इस देश पर रहेगा ही।

दूसरा समाधान स्वामी दयानन्द ने यह प्रस्तुत किया कि जो भारतीय जनता मुसलमान या ईसाई हो गयी है उसे शुद्ध करके वैदिक आर्य बनाओ। न केवल इतना ही, बल्कि मानवता की दृष्टि से अन्य देशों के ईसाई, मुसलमान बौद्ध, जैनी सबसे कहो कि असत्य और अज्ञान का परित्याग करके विद्या और सत्य को अपनाओ और विश्व बन्धुत्व की संस्थापना करो।

जन्मना जातिवाद का उन्मूलनः-

अनेक ऐसे हिन्दू नेता और धार्मिक आचार्य उत्पन्न हुए, जिन्होंने हिन्दू समाज से ऊँच–नीच का भेद हटाकर सबको सामाजिक दृष्टि से समान स्थिति प्रदान करने के पक्ष में आन्दोलन किया। इन धार्मिक नेताओं का कहना था कि भगवान् की दृष्टि में न कोई मनुष्य नीच है न ऊँच। अपने गुण, कर्म, सदाचार व भक्ति द्वारा ही मनुष्य उच्च पद प्राप्त कर सकता है। मध्य युग के इन धार्मिक नेताओं में रामानन्द, चैतन्य, नानक, कबीर आदि प्रमुख थे। पर मध्य युग के सन्त–महात्मा हिन्दू समाज से ऊँच–नीच और छूत–अछूत के रोग का निवारण करने में असमर्थ रहे। सामाजिक दृष्टि से न रैदास ऊँची स्थिति प्राप्त कर सके न कबीर और न सेन तथा चोखमेला। रैदास के चरित्र और भक्ति से उच्चवर्णों के लोग प्रभावित अवश्य हुये, पर उन्हें वैष्णव धर्म में ब्राह्मण आचार्यों के समकक्ष स्थिति प्राप्त नहीं हुई। रैदास के अनुयायी सजातीय लोग एक पृथक पन्थ के रूप में परिवर्तित हो गये और हिन्दू समाज में उनकी स्थिति नीची ही मानी जाती रही। यही बात कबीर आदि अन्य सन्तों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

भारत के सामाजिक जीवन के ऊँच–नीच और छुआ–छूत के भेद को दूर करने के लिए अनेक बार प्रयत्न हुए। गौतक बुद्ध और वर्धमान महावीर ने भी इस सम्बन्ध में अनथक प्रयत्न किया था और आंशिक सफलता प्राप्त की थी। उनकी अल्प सफलता का कारण यह था कि इन धर्मों की मान्यताएं भारत की प्राचीन परम्पराओं के अनुकूल नहीं थी। ये न वेदों की प्रामाणिकता में विश्वास करते थे,

न सृष्टि के कर्त्ता धर्त्ता और संहर्त्ता ईश्वर की सत्ता को ही स्वीकार करते थे। इसलिए ये भारतीय जनता को स्थायी व गहन रूप में अपने प्रभाव में नहीं रख सके और समाज में ऊँच–नीच आदि के भेदभाव को दूर कर समानता स्थापित कर सकने में भी असफल रहे। अतः ये दोनों धार्मिक आन्दोलन भारतीय जनता के बड़े भाग को प्रभावित कर सकने में असमर्थ रहे। मध्यकाल के सन्त महात्मा भक्ति मार्ग के प्रतिपादक थे और भगवान् की भक्ति में ऊँच–नीच के भेदभाव को भूल जाते थे। भक्तों की सीमित मण्डली में नीच समझे जाने वाले लोगों से उन्होंने प्रेम अवश्य किया, पर सामाजिक जीवन में शूद्रों की स्थिति परिवर्तित करने के लिये वे कुछ ठोस कार्य नहीं कर सके। उनके दिमाग में वर्ण परिवर्तन की बात नहीं आई। अर्थात् शूद्र अपने अच्छे गुण, कर्म, सदाचार तथा भक्ति आदि से भगवान् को प्राप्त कर सकता है परन्तु शूद्र से ब्राह्मण नहीं बन सकता। श्रेष्ठ गुण, कर्म तथा सदाचार का पालन करने वाले शूद्र जब तक समाज में "शूद्र" नाम से ही कहे जाते रहेंगे, तब तक उनकी सामाजिक निम्नतम स्थिति समाप्त नहीं हो सकेगी। इस तथ्य की ओर मध्य कालीन संत महात्माओं का ध्यान नहीं गया।

उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में भारत में नव जागरण का सूत्रपात हुआ। इस काल में समाज सुधार के लिये स्थापित संस्थाओं में ब्राह्म समाज, प्रार्थना–समाज तथा थियसोफिकल सोसाइटी प्रमुख थीं। ब्रह्म समाज का प्रभाव बंगाल में ही सीमित रहा और प्रार्थना समाज का बम्बई में।

इसके साथ ही इन संस्थाओं के प्रवर्त्तकों तथा संचालकों ने सामाजिक कुरीतियों व कुप्रथाओं के निवारण के लिये धर्म–ग्रन्थों का सहारा लेने पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। सामाजिक प्रथाओं का आधार प्रायः धर्म होता है। हिन्दुओं में यदि कुछ जातियों को ऊँचा या नीचा और कुछ को अछूत माना जाता था, तो उसका आधार भी धर्म को ही प्रतिपादित किया जाता था। पण्डित लोग स्मृतियों और धर्मशास्त्रों के आधार पर यह निरूपित करते थे कि ब्राह्मणों की उत्कृष्ट स्थिति और शूद्रों को हीनदशा शास्त्र सम्मत है। इन बुराइयों को समाज से तभी सफलता पूर्वक दूर किया जा सकता है, जब वेद शास्त्रों के प्रमाणों से यह सिद्ध किया जाय कि ये बातें न धर्मानुकूल हैं और न शास्त्र सममत इस दिशा में स्वामी दयानन्द के अतिरिक्त अन्य किसी ने भी प्रयत्न नहीं किया। सर्व प्रथम भारतीय वर्ण व्यवस्था में शूद्रों की हीन स्थिति के बने रहने के जो प्रमुख आधार धर्मशास्त्र थे, उन्हें महर्षि दयानन्द ने चुनौती दी। उन्होंने वर्ण व्यवस्था को गुण, कर्म तथा स्वभाव के आधार पर व्यवस्थित करने के वैदिक नियम को उपस्थित किया। मध्यकाल में विकसित धर्मशास्त्रों तथा धार्मिक मान्यताओं को कपोल कल्पित तथा वेदशास्त्र का विरोधी बताया। धार्मिक व्यवस्था ताि उस पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के लिये उन्होंने वेदों की प्रामाणिकता की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया।

पौराणिक धर्मशास्त्रों; सूत्रों तथा स्मृतियों में शूद्रों के लिए दन्ड व्यवस्था अत्यन्त कठोर है। उदाहरणार्थ यदि शूद्र द्विजातियों को कड़ी अर्थात् चुभने वाली बात कहे तो उसकी जीभ काट डालनी चाहिए (मनुस्मृति, ८/२७०)। [(मनुस्मृति के इन श्लोकों को स्वामी दयानन्द प्रामाणिक नहीं मानते। उनकी दृष्टि में आजकल प्रचलित मनुस्मृति का अधिकांश भाग प्रक्षिप्त है। वेद के विरुद्ध तथा परस्पर विरुद्ध होने के कारण भी मनुस्मृति के अनेक श्लोक अप्रामाणिक हैं)] यदि द्रोह पूर्वक कठोर वचन कहे तो जलती हुई दश अंगुल लम्बी लोहे की शलाका उसके मुख में डाल देनी चाहिए (मनुस्मृति ८/२७१)। यदि अहंकार से ब्राह्मण को धर्मोपदेश करें तो राजा तपा हुआ तेल उसके मुँह और कान में डलवा दे (मनुस्मृति ८/२७२)। यदि उच्च जातियों के साथ एक आसन पर बैठने की कोशिश करें तो उसकी कमर दाग कर उसे देश से निकाल दे अथवा उसके एक चूतड़ को कतरवा दे (मनु० ८/२८१)। यही नहीं शूद्र को प्राण दण्ड तक का विधान स्मृतिकारों ने दिया है। यदि शूद्र द्विज–स्त्री से समागम करे तो दण्ड के रूप में राजा उसकी लिंगेन्द्रिय को कटवा दे और उसका धन छीन लेवे। यदि वह अपनी रक्षा करता हो तो उसका वध करा दे (गौतम स्मृति, अध्याय १२)। मनु के अनुसार ब्राह्मण जाति की कन्या से समागम करने वाला शूद्र बध के योग्य है (८/३५६, ३६६)। ब्राह्मणी के साथ गमन करने वाले शूद्र को आग में फेंक देना चाहिए (संवर्तसंहिता, १५२–१५४, १६६–१६८)। शूद्र के प्रति यह अन्याय उस समय बहुत अखरने लगता है, जब हम स्मृतिकारों द्वारा एक ही प्रकार के अपराध के लिये शूद्र को बहुत कठोर और ब्राह्मण को बहुत हल्का दण्ड देते पाते हैं। उदाहरणार्थ ब्राह्मण के साथ समागम करने वाली कन्या को कुछ भी दण्ड न दे (मनु० ८/३६५)। शूद्र स्त्री से व्यभिचार करने वाले द्विज पुरुष को देश निकाला दिया जाये पर जो शूद्र द्विज स्त्री से व्यभिचार करे तो उसे प्राण दण्ड दिया जाय (आपस्तम्ब धर्मसूत्र, प्रश्न २, पटल १०; खण्ड २७, सूत्र ८–६)।

किन्तु दण्ड व्यवस्था के सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द का सिद्धान्त मध्यकालीन स्मृतियों तथा सूत्र के बिल्कुल विपरीत है। जिस अपराध में साधारण मनुष्य को एक पैसा दण्ड हो, उसी अपराध में राजा को सहस्र गुणा, मन्त्री को आठ सौ गुणा तथा छोटे से छोटे राजकीय भृत्य को आठ गुणे दण्ड से कम न होना चाहिये ... .. ब्राह्मण को चौंसठ गुणा या सौ गुणा अथवा एक सौ अट्ठाइस गुणा दण्ड होना चाहिए अर्थात् जिसका अधिक ज्ञान और प्रतिष्ठा हो उसको अपराध में उतना ही अधिक दण्ड होना चाहिए।

(महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश, षष्ठ समु०)

गुण कर्मानुसार चातुर्वर्ण्य की स्थापना के लिए जो क्रियात्मक पद्धति महर्षि ने प्रतिपादित की है, उसकी मुख्य बातें निम्नलिखित हैं:–

(१) राजनियम तथा जाति नियम द्वारा सब बालक–बालिकाओं को आठ वर्ष की आयु हो जाने पर गुरुकुलों (आवासीय शिक्षणालयों) में भेज दिया जाये। शिक्षा सबके लिए अनिवार्य हो और एक समाज हो, चाहे द्विज की संतान हो और चाहे शूद्र या अतिशूद्र की।

(२) गुरुकुलों में सबको समान आसन, समान वस्त्र और समान भोजन मिले, चाहे वे धनी माता–पिता की सन्तान हों, चाहे दरिद्र माता–पिता की।

(३) शिक्षणकाल में विद्यार्थियों का सम्पर्क उनके माता–पिता से बिल्कुल न हो जिससे उनमें माता पिता की आर्थिक स्थिति या वर्ण के आधार पर उच्च या निम्न भावना न बने।

(४) शिक्षण काल की समाप्ति पर आचार्यों द्वारा उन वर्ण उनके गुण; कर्म, स्वभाव तथा योग्यता के आधार पर निर्धारित किया जाये।

(५) गृहस्थ जीवन में पदार्पण के निमित्त स्नातक तथा स्नातिकाओं के विवाह उनके आचार्य द्वारा निर्धारित वर्ण के अनुसार, गुण, कर्म तथा स्वाभावगत आधार पर किए जाएं।

इस प्रकार गुण कर्मानुसार चातुर्वर्ण्य की स्थापना का यह क्रियात्मक मार्ग स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित किया गया है। न इसकी ओर बुद्ध और महावीर का ध्यान गया, न मध्यकाल के संत–महात्माओं या धार्मिक तथा दार्शनिक आचार्यों का। इसकी ओर उन्नीसवीं सदी के उन सुधारकों का ध्यान भी नहीं गया, जो पश्चिम से प्रेरणा लेकर भारत की सामाजिक दशा सुधारना चाहते थे। वस्तुतः भारत के इतिहास में अकेले महर्षि दयानन्द सरस्वती ही ऐसे चिन्तक हुए हैं, जिन्होंने देश की भयंकर सामाजिक व्यवस्था की जातिगत बुराइयों की बीमारी के मूल कारणों का पता लगाया और उसके निवारण के लिए क्रियात्मक और सशक्त उपाय प्रतिपादित किए।

अध्यापक आवास, स्टेशन रोड
अमेठी–२२७४०५ (उ० प्र०

महर्षि दयानन्द के स्त्री शिक्षा विषयक विचार

- डॉ० (श्रीमती) इन्दु शर्मा,
प्रोफेसर, संस्कृत एवं प्राच्यविद्या संस्थान, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

हमारी संस्कृति के अनुसार इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के मूल में जो महाशक्तियां विद्यमान हैं उन्हें पुरुष और प्रकृति के नाम से जाना जाता है। वेदान्तवादियों के अनुसार उन्हें ब्रह्म और माया कहा जाता है। जबकि तन्त्रविद्या के प्रणेताओं ने उन्हें शिव और शक्ति के नाम से अभिहित किया है। पुरुष और नारी इन्हीं दोनों शक्तियों का व्यष्टि रूप माने जाते हैं। यही कारण है कि हमारी संस्कृति में ईश्वर की कल्पना अर्धनारीश्वर के रूप में की गई है। जब तक, पुरुष स्त्री को सच्चे अर्थों में मनसा, वाचा, कर्मणा अपनी अर्धांगिनी स्वीकार नहीं करता तब तक वह पुरुष की संज्ञा का पात्र नहीं हो सकता। हमारी परम्परा के अनुसार यज्ञ जैसे पुनीत कार्यों में भी पति और पत्नी दोनों की उपस्थिति अपेक्षित है परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि वेदमन्त्रों के अर्थ का अनर्थ करने वाले कुछ स्वार्थी तत्वों ने नारियों को वेदमन्त्रों के अध्ययन तक के अधिकार से वंचित करने का दुस्साहस किया। वे यह भूल गए कि ऋषिकाओं द्वारा आत्मसात् की जाने वाली ऋचाओं के अध्ययन के बिना वेद का पूर्ण ज्ञान असंभव है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि वैदिक काल में नारियों को मात्र वेदाध्ययन का ही अधिकार नहीं था अपितु वे मन्त्रद्रष्ट्री बनने की भी अधिकारिणी थीं। यही युग था जब जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष और नारी की सहभागिता और सहकारिता का समारंम्भ हुआ।

स्वामी दयानन्द के नारी–शिक्षाविषयक विचार पूर्णरूपेण तत्सम्बन्धी वैदिक मान्यताओं से प्रेरित ही नहीं अपितु निःसृत भी हैं। पूना प्रवचनमाला के तृतीय प्रवचन में स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने वर्तमान समाज से आग्रह किया है कि यदि वे सच्चे अर्थों में वैदिक काल में स्त्रीशिक्षा को प्राप्त महत्व से परिचित होना चाहते हैं तो उन्हें आर्य लोगों के इतिहास की ओर देखना चाहिए, जिसमें स्त्रियों के आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का उल्लेख मिलता है। उनके उपनयन और गुरु–गृह में वास के संस्कारों की चर्चा उपलब्ध होती है। इस सत्य की सिद्धि के लिए उन्होंने गार्गी, सुलभा, मैत्रेयी, कात्यायनी आदि विदुषियों का उदाहरण दिया है जो बड़े–बड़े ऋषियों एवं मुनियों की शंकाओं का समाधान करती थीं। इसके अतिरिक्त ऐसी अन्य बहुत सी ऋषिकाएं हैं जो मन्त्रों को आत्मसात् करने में सफल रहीं। वस्तुतः स्वामी दयानन्द ने स्त्रीशिक्षा की आवश्यकता का जो महत्व सिद्ध किया है वह सर्वथा वेदसम्मत है।

स्वामी जी से पहले स्त्रीशिक्षा का प्रचार लगभग लुप्तप्राय हो गया था। **'स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः'** की भ्रान्ति लगभग प्रचलित हो चुकी थी, स्वामी जी इसके पक्षधर नहीं थे। उन्होंने इसका विरोध करते हुए कहा था कि शिक्षा मनुष्यमात्र का अधिकार है। जो लोग स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हैं वे सर्वथा मूर्ख, स्वार्थी और निर्बुद्धि हैं। स्वामी जी ने बालक और बालिकाओं की शिक्षा की अनिवार्यता और उन्हें शिक्षा से वंचित रखने के लिए उनके माता–पिता की दण्डनीयता का समर्थन करते हुए लिखा है– ''इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पांचवें और आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़के और लड़कियों को घर पर न रखे। पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजें वे दण्डनीय हों।''[१] उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि राजा को ऐसा यत्न करना चाहिए जिससे सब बालक और बालिकाएं ब्रह्मचर्यपूर्वक रहते हुए विद्यायुक्त होकर समृद्धि को प्राप्त हों तथा सत्य, न्याय और धर्म का निरन्तर सेवन करें।[२] इस कथन में विद्या शब्द का उल्लेख मिलता है। विद्या को केवल उस शिक्षा का पर्याय नहीं कहा जा सकता जो मात्र अक्षरबोध, लिपिबोध और गणितबोध तक ही सीमित हो। विद्या से तात्पर्य है, शिक्षा और संस्कार दोनों का समन्वय। भारतीय शिक्षा–पद्धति के मूल में यही अवधारणा है, क्योंकि यहां केवल अक्षरबोध, लिपिबोध और गणित बोध को अविद्या कहा गया है और आत्मोत्थान विषयक ज्ञान को विद्या माना गया है। तदनुसार मानव का पूर्णत्व विद्या और अविद्या के समन्वय में दर्शाया गया है। आज की शिक्षा का उद्देश्य केवल जीवनोपयोगी साधनों के उपार्जन में सहायक ज्ञान तक सीमित रह गया है। शिक्षक हो अथवा शिक्षार्थी दोनों का शिक्षाविषयक उद्देश्य एक है, और वह है– भौतिक सुख–समृद्धि में आसक्ति और उसकी प्राप्ति। इसी के दुष्परिणामों को देखते हुए नैतिक शिक्षा की अपेक्षा बल पकड़ती जा रही है। समस्त आर्यसमाजी गुरुकुलों और पाठशालाओं में इसका प्रावधान भी किया गया है, परन्तु विश्वविद्यालयीय स्तर पर जब तक इसे एक अनिवार्य विषय का स्थान प्राप्त नहीं होता तब तक स्वामी दयानन्द का स्त्री शिक्षाविषयक आदर्श कार्यान्वित नहीं हो सकता। इसी सत्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने ऋग्वेद का उद्धरण देते हुए कहा है– ''जितनी कुमारी हैं वे विदुषियों से विद्याध्ययन करें और वे ब्रह्मचारिणी कुमारी उन विदुषियों से ऐसी प्रार्थना करें कि आप हम सबको विद्या और सुशिक्षा से युक्त करें।''[३]

यह तो सर्वथा स्पष्ट है कि शिक्षा से स्वामी जी का अभिप्राय इसे केवल अक्षरबोध, लिपिबोध, गणितबोध और अन्य विज्ञान तथा वाणिज्य की शाखाओं के बोध तक सीमित रखना नहीं है। वे शिक्षा को चरित्र–निर्माण का आधार मानते थे। उनका मत था कि यदि माता–पिता अपने पुत्र तथा पुत्रियों को अच्छी शिक्षा देकर, तत्पश्चात विद्वान् और विदुषियों के समीप बहुत काल तक रखकर पढ़ावें तब वे कन्या और पुत्र सूर्य के समान अपने कुल और देश के प्रकाशक हों।[४] सुशिक्षा के महत्व को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है– जैसे माताएं सन्तानों को दूध आदि देकर बढ़ाती हैं वैसे ही विदुषी स्त्रियां और विद्वान् पुरुष कुमारियों और कुमारों को विद्या और अच्छी शिक्षा देकर बजाये उन्होंने विद्या और शिक्षा को मनुष्य के मानसिक और आध्यात्मिक विकास का आधार स्वीकार किया है। दूसरे शब्दों में स्वामी दयानन्द उस वैदिक मान्यता के समर्थक हैं जिसके अनुसार विद्या और अविद्या का समन्वय पूर्णत्व प्राप्ति का साधन हो सकता है। स्वामी दयानन्द शिक्षा को मनुष्य के सर्वांगीण विकास का स्त्रोत मानते थे। ब्रह्मचर्य जीवन पर पुनः–पुनः दिया गया बल उनके इस विश्वास को स्वयं स्पष्ट कर देता है कि शिक्षा वह साधन है जिसका उपार्जन समाज के सर्वांगीण विकास के लिए अनिवार्य है। जब तक स्त्रियां इस क्षेत्र में पुरुष से कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने में समर्थ नहीं हो जातीं तब तक समाज का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं। शिक्षा की अनिवार्यता के साथ–साथ उन्होंने इस क्षेत्र में गुरु और गुरुपत्नी के दायित्वों की भी चर्चा की है। उनके अनुसार गुरु और गुरुपत्नी को चाहिए कि वे वेद और उपवेद तथा वेद के अंग और उपांगों की शिक्षा से देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण और मन की शुद्धि, शरीर की पुष्टि तथा प्राण

की सन्तुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे गुणों में प्रवृत्त करावें।[५]

वस्तुतः स्वामी जी दैहिक, एन्द्रियिक, मानसिक और प्राणविषयक विकास को शिक्षा का अंग मानते थे और गुरु तथा गुरुपत्नी को इनके उपार्जन का स्रोत। उन्होंने स्त्रीशिक्षा के विरोधियों को निरुत्तर करने के लिए **'इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्'** उद्धरण का आश्रय लिया है। शतपथ ब्राह्मण में स्पष्टतथा उल्लेख मिलता है कि जहां पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी होगी अथवा स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् रहेगा तो घर में नित्यप्रति देवासुर संग्राम मचा रहना स्वाभाविक है।[७] उनके अनुसार पुरुषों की भांति स्त्रियों के अलए व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्प–विद्या का ज्ञान अनिवार्य है, क्योंकि इसके बिना सत्य–असत्य का निर्णय, अनुकूल व्यवहार, यथा योग्य सन्तानोत्पति, उसका पालन, वर्धन और सुशिक्षा सम्भव नहीं। इन शाखाओं के अध्ययन के साथ–साथ स्त्रियों के लिए पाकविधि सीखने का भी आग्रह किया गया है।[८] उन्होंने परामर्श दिया है कि शिक्षा के लिए लड़कों को पुरुषों की और लड़कियों को स्त्रियों की पाठशाला में जाकर ब्रह्मचर्य की विधिपूर्वक सुशीलता से विद्या और भोजन बनाने की क्रिया सीखनी चाहिए।

स्वामी जी के शिक्षा–सम्बन्धी विचार भारतीय संस्कृति के सर्वथा अनुरूप हैं। तदनुसार ही उन्होंने ईश्वरीय ज्ञान वेद की शिक्षा को सर्वोपरि प्राथमिकता देने का आग्रह किया है। इस बात पर भी बल दिया है कि कन्याओं की शिक्षा भी उतनी ही आवश्यक है जितनी कि बालकों की। वे विदेशी भाषाओं की शिक्षा के विरुद्ध नहीं हैं, परन्तु यह मानते हैं कि वे भाषाएं अपनी भाषा के साथ सहायक रूप में सीखी जाएं।

उनके अनुसार गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का ध्येय विभिन्न विद्याओं और अविद्याओं में निपुणता प्राप्त करने के साथ–साथ चरित्र–निर्माण की दिशा में छात्रों में छात्रों का उचित मार्ग–दर्शन करना भी है। यही कारण था कि विदेशी शासकों की वक्रदृष्टि होते हुए भी गुरुकुल शिक्षा संचालकों ने अपनी शिक्षा नीति में विदेशी शासन का हस्तक्षेप कभी स्वीकार नहीं किया और अपने परिश्रम और जनसामान्य के सहयोग से, बिना किसी शासकीय आर्थिक अनुदान के इन संस्थाओं को प्रगतिपथ पर अग्रसर किया। स्वामी दयानन्द के द्वारा स्त्री–शिक्षा के प्रचार और प्रसार के लिए किए गए उपादेय योगदान के फलस्वरूप आज सरकार ने छात्राओं के लिए स्नातक स्तर तक की शिक्षा निःशुल्क कर दी है। आज माता–पिता अपनी पुत्रियों को शिक्षा दिलाने के लिए उतने ही उत्सुक हैं जितने कि पुत्रों को। यह उन्हीं के द्वारा प्रचारित नारी शिक्षा और नारी–स्वातन्त्रय की विचारधारा का परिणाम है कि आज भारतीय ललनाएं केवल वायुसेना के प्रतिष्ठित पदों पर ही नहीं अपितु अन्तरिक्ष तक की सफल यात्रा करने में सफल हो रही हैं। वे हिमालय के उच्चतम शिखर पर सफल अभियान करने में विश्व में अपना कीर्तिमान स्थापित कर चुकी हैं।

वस्तुतः शिक्षा हमें मानव संस्कृति के आधारभूत शाश्वत संस्कारों से युक्त करती है। भारतीय नारी केवल अपने अधिकारों के लिए ही प्रबुद्ध नहीं है। स्वामी जी ने स्त्रियों को अध्यापिकाओं के पद पर नियुक्त करने का परामर्श देते हुए कहा था कि कन्याओं के विद्यालयों में केवल स्त्री अध्यापिकाओं की नियुक्ति की जाए। उनके अपने शब्दों में ''सब विद्वान् जन अपनी–अपनी विदुषी स्त्री के प्रति ऐसा उपदेश दें कि तुम्हें सबकी कन्याओं को पढ़ाना चाहिए और सब स्त्रियों को सुशिक्षित करना चाहिए।''[९] इस उद्धरण में स्त्रियों को सुशिक्षित करने वाली बात यह सिद्ध करती है कि स्वामी दयानन्द प्रौढ़ स्त्री–शिक्षा के भी पक्षधर थे। उन्होंने विदुषी स्त्रियों को कुमारी कन्याओं की विद्या, सुशिक्षा और सौभाग्य में वृद्धि के लिए उतना ही लाभकारी माना है जितना कि जागते हुए मनुष्यों के लिए प्रभातवेला गुणकारी होती है।[१०] उनके अनुसार विदुषी अध्यापिका को भूमि के तुल्य क्षमाशील, लक्ष्मी के तुल्य शोभायमान, जल के तुल्य शान्त और सहेली के तुल्य उपकारक होना चाहिए।[११]

अध्यापन कार्य उनके गृहस्थकर्त्तव्य सम्पादन में बाधक न हो इस बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने लिखा है कि श्रेष्ठ स्त्रियों को उचित है कि वे अच्छी शिक्षित दासियों को रखें, जिससे सब पाक आदि की क्रिया और सेवा समय पर हो सके। परिचारिका का गुणोल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है कि यह प्रीतियुक्त, सुकेशिनी, सुन्दर श्रेष्ठ कर्म करने वाली और पाकविद्या में निपुण होनी चाहिए।[१२]

निष्कर्षतः स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में स्त्रीशिक्षाविषयक जो विचार अभिव्यक्त किए हैं वे वैदिक संहिताओं में प्रतिपादित स्त्रीशिक्षाविषयक धारणाओं का अनुमोदन करते हैं और उनकी सार्वकालिक और सार्वभौमिक प्रासंगिकता की सिद्धि में सर्वथा सहायक सिद्ध होते हैं। वास्तव में हमारे देश में स्त्रीशिक्षा का ह्रास यवन आक्रमण काल में ही प्रारम्भ हुआ था। और दासता के उत्तरोत्तर कसते हुए शिंकंजे ने हमारे पुरूष समाज को स्त्री शिक्षा के प्रति उदासीन होने के लिए विवश कर दिया थां दासता मनुष्य की मानसिकता के लिए उतनी ही हानिकारक है जितना कि पूर्णिमा के चन्द्रमा के लिए ग्रहण। स्वतन्त्रता से जिस राष्ट्रीयता की भावना का जागरण वांछित था, स्वतंत्रता आन्दोलन की सफलता के लिए नारियों द्वारा जो योगदान अपेक्षित था, वह तभी सम्भव हो पाया जब स्वामी दयानन्द ने अपने स्त्रीशिक्षा समर्थक विचारों को कार्यान्वित करने के लिए उद्बुद्ध भारतीय नागरिकों को आर्य कन्या पाठशालाओं, विद्यालयों, महाविद्यालयों की स्थापना करने की प्रेरणा देकर नारी को देश के प्रति अपने दायित्वों के निर्वाह के लिए सामर्थ्य प्रदान करने का अवसर दिया। इस क्षेत्र में उनका योगदान सदा–सर्वदा स्मरणीय रहेगा। डी. ए. वी. पब्लिक स्कूलों, पाठशालाओं, विद्यालयों और महाविद्यालयों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई संख्या इस तथ्य को स्वयं सिद्ध करती जान पड़ती है। उनके स्त्रीशिक्षाविषयक विचार हमें उनके राष्ट्रप्रेम, स्त्रीकल्याण के प्रति उत्साह, और समाज कल्याण विषयक अदम्य प्रवृत्ति से परिचित कराने में सर्वथा समर्थ हैं।

सन्दर्भ :-

१. सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास–३ (२) ऋग्भाष्य, ६.४४.१८ (३) वही, २.४१.१६ (४) यजुर्भाष्य, ११.३६ (५) ऋग्भाष्य, १.१५२.६ (६) यजुर्भाष्य, ६.१४ (७) सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास–३ (८) यजुर्भाष्य, ११.५६ (९) ऋग्भाष्य, २.४१.१७ (१०) यजुर्भाष्य, ३४.४० (११) ऋग्भाष्य, ४.७०.७ (१२) यजुर्भाष्य, ११.५६

धर्म, समाज और शिक्षा के क्षेत्र में
आर्य समाज के कार्यों पर एक दृष्टि

"आर्य समाज ने भारतीय चिन्ता को झकझोर दिया था, पर प्राचीन आप्त वाक्य को मानने की प्रवृत्ति को उसने और भी अधिक प्रतिष्ठित किया। इसका परिणाम सभी क्षेत्रों में देखा गया। साहित्य के क्षेत्र में भी इस समय तक प्रमाण ग्रन्थों के आधार पर विवेचना करने की प्रथा चल पड़ी थी।" हिन्दी साहित्य के लिए आर्य समाज की यह ठोस सेवा है। धर्म के समान ही समाज में भी आर्य समाज ने आमूल परिवर्तन के लिए कठिन प्रयास किया और शिक्षा के क्षेत्र में सम्पूर्ण प्रणाली को ही प्राचीन विद्या तथा आर्य भाषा के दृढ़ आधार पर स्थित किया। इस प्रकार हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में आर्य समाज का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

जिन सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों के द्वारा हिन्दी को प्रोत्साहन मिला तथा जिन प्रवृत्तियों का इस दिशा में योगदान रहा है, उनमें आर्य समाज का स्थान सर्वोपरि है। यही कारण है कि हिन्दी भाषा अथवा साहित्य का इतिहास लिखने वाले सभी विद्वानों ने हिन्दी गद्य के निर्माण में आर्य समाज के योग को विशेष महत्त्वपूर्ण माना है। मिश्र बन्धुओं ने 'मिश्रबन्धु विनोद' में, रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में, पद्मसिंह शर्मा ने स्फुट निबन्धों में और काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित अनेक साहित्यिक विवरणों में आर्य समाज के धार्मिक और सुधारक आन्दोलन को गद्य के निर्माण और प्रसार के लिए अत्यधिक श्रेय दिया गया है।

स्वामी दयानन्द के देहान्त के कुछ वर्ष बाद ही उत्तर भारत में आर्य समाज का आन्दोलन इतना व्यापक हो गया कि वह देहातों तक में जा फैला। हिन्दी पहले–पहल दूरस्थ क्षेत्रों में आर्य समाज के प्रचारकों के प्रयत्न से ही पहुँच सकी। आर्य समाज से सम्पर्क के कारण हजारों व्यक्तियों ने हिन्दी सीखी, जिससे कि वे समाज के सदस्य बन सकें और उनके दैनिक और साप्ताहिक कार्यक्रम में भाग ले सकें। अनेक साधारण कस्बों में भी आर्य समाज मंदिर बन गये। इन मंदिरों में साप्ताहिक सभाएँ होती थीं और सारा कार्य हिन्दी में किया जाता था। सभी स्थानों में वार्षिक उत्सव होते थे, जिनके कारण प्रचार कार्य को गति मिलती थी और जनता में जागृति पैदा होती थी। इस जागरण में प्राचीन वैदिक संस्कृति का स्थान था, धर्म और सभ्यता का प्रचार था, आचार और विचार की सात्विकता पर जोर था और इन सबके फलस्वरूप अपने देश और अपनी भाषा के गौरव की रक्षा हुई।

आर्य समाज के कार्यक्रम में हिन्दू संगठन एवं शुद्धि के कारण भी आर्य समाज के प्रचार कार्य को बल मिला। ईसाई या मुसलमान बने हुए हिन्दुओं को पुनः हिन्दू समाज में प्रविष्ट करना आर्य समाज ने अपना उद्देश्य बना लिया था। इससे हिन्दू समाज में आर्य समाज के कार्य के प्रति उत्साह का संचार हुआ और नवोत्साही समाज सुधारक तथा शिक्षितवर्ग अधिकाधिक इसका समर्थन करने लगा। उदाहरणार्थ, आर्य समाज ने बाल–विवाह का बड़ा विरोध किया और अजमेर के सामाजिक नेता, हरबिलास शारदा ने इस आशय का प्रस्ताव केन्द्रीय विधानसभा में रखा, जो बाद में (1929) कानून बन गया। केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय विधानसभाओं में जब कभी समाज सुधार सम्बन्धी विधेयक प्रस्तुत हुए तो आर्य समाज के नेताओं ने सदा उनका समर्थन किया।

20वीं शती के सामाजिक नेताओं ने हिन्दी को सबसे पहले शिक्षा के माध्यम के रूप में स्थान दिया और दिलाया। सरकारी स्कूलों पर ही निर्भर न रहकर आर्य समाज ने पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान इत्यादि प्रदेशों में सैकड़ों शिक्षण संस्थाएँ स्थापित कीं, जिनके नाम 'आर्य समाज पाठशाला', आर्य कन्या विद्यालय, दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल या कालेज आदि रखे गये। इन सभी में हिन्दी पढ़ना अनिवार्य था।

शिक्षा के प्रश्न को लेकर आर्य समाज में शताब्दी के आरम्भ में ही दो दल हो गये। एक दल गुरुकुल प्रणाली का समर्थक था और दूसरा पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के स्कूलों में ही हिन्दी और समाज के कार्य को प्रोत्साहन देने के पक्ष में था। गुरुकुल प्रणाली के समर्थकों के नेता श्री मुंशीराम थे, जो संन्यास लेने के बाद स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम से विख्यात हुए। उन्होंने गुरुकुल प्रणाली को क्रियात्मक रूप देने के लिए हरिद्वार के पास कांगड़ी में सन् 1902 में एक गुरुकुल की स्थापना की। इसके बाद ही पंजाब, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के विभिन्न शहरों में स्थानीय सामाजिक नेताओं द्वारा कई गुरुकुल खोल दिये गये, जिनमें से प्रमुख गुरुकुल कांगड़ी, महाविद्यालय ज्वालापुर, गुरुकुल वृन्दावन, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ, कन्या महाविद्यालय जालंधर, देहरादून कन्या गुरुकुल, हाथरस तथा आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा है। इन गुरुकुलों में संस्कृत में वैदिक धर्म का अध्ययन और हिन्दी शिक्षा अनिवार्य है कि इसके कारण हिन्दी का प्रसार तेजी से हुआ। संस्कृत और हिन्दी के सान्निध्य से वैदिक और पौराणिक साहित्य का हिन्दी में अनुवाद हुआ और स्नातकों के रूप में हिन्दी को अनेक साहित्यिक और उत्साही प्रचारक मिल गये। दूसरे दल के प्रमुख नेता लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज, पं. गुरुदत्त, लाला लालचन्द आदि थे। डी.ए.वी. कालेज, लाहौर की स्थापना के पश्चात् ऐसी ही उच्च शिक्षा संस्थाएँ पंजाब के अन्य नगरों में तथा विभिन्न प्रान्तों में स्थापित हुई। आज भी शिक्षा, प्रशासन, पत्रकारिता आदि के क्षेत्रों में अनेक स्थानों पर इन कालेजों व गुरुकुलों के स्नातक हिन्दी की सेवा कर रहे हैं।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

सबसे अधिक सफलता आर्य समाज को बालिकाओं की शिक्षा के क्षेत्र में मिली। कन्या गुरुकुलों और विद्यालयों में हिन्दी अनिवार्य विषय ही नहीं था, बल्कि वह शिक्षा का एकमात्र माध्यम बनाई गई। कन्याओं की हिन्दी शिक्षा के कारण पंजाब जैसे प्रान्त का, जिसमें अधिकतर उर्दू का ही बोलबाला था, वातावरण धीरे–धीरे हिन्दी के अनुकूल होने लगा। सच तो यह है कि समस्त भारत में स्त्री शिक्षा की पक्की नींव आर्य समाज ने ही डाली।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि धर्म, समाज और शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज का बड़ा प्रभाव था और इन तीनों ही क्षेत्रों में अपने कार्य की गतिविधि के लिए आर्य समाज ने हिन्दी को ही अपनाया। हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में – **"आर्य समाज ने भारतीय चिन्ता को झकझोर दिया था, पर प्राचीन आप्त वाक्य को मानने की प्रवृत्ति को उसने और भी अधिक प्रतिष्ठित किया। इसका परिणाम सभी क्षेत्रों में देखा गया। साहित्य के क्षेत्र में भी इस समय तक प्रमाण ग्रन्थों के आधार पर विवेचना करने की प्रथा चल पड़ी थी।"** हिन्दी साहित्य के लिए आर्य समाज की यह ठोस सेवा है। धर्म के समान ही समाज में भी आर्य समाज ने आमूल परिवर्तन के लिए कठिन प्रयास किया और शिक्षा के क्षेत्र में सम्पूर्ण प्रणाली को ही प्राचीन विद्या तथा आर्य भाषा के दृढ़ आधार पर स्थित किया। इस प्रकार हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में आर्य समाज का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

– संकलन, मधुर प्रकाश शास्त्री
उपमंत्री, सार्वदेशिक सभा

ज्योति पर्व दीपावली की
हार्दिक शुभकामनाएँ

सार्वदेशिक सभा परिवार समस्त आर्यजनों को दीपावली के पुनीत पर्व पर सुख, समृद्धि, स्वास्थ्य और शांति की कामना से परिपूर्ण बधाई देता है।

दीपावली के दिन ही महर्षि दयानन्द सरस्वती का निर्वाण, समस्त आर्यों के लिए ईश्वर भक्ति के मार्ग पर चलने तथा संगठित होने की सर्वोच्च प्रेरणा बनें, ऐसी परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है।

स्वामी आर्यवेश — सभा प्रधान
प्रो. विट्ठलराव आर्य — सभा मंत्री
पं. माया प्रकाश त्यागी — कोषाध्यक्ष

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
"दयानन्द भवन" 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002

निराले ऋषि की निराली दीवाली

– डॉ. महेश विद्यालंकार

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमय।

दीपावली अन्धकार पर प्रकाश की विजय का पर्व है। असत्य से सत्य, अज्ञान से ज्ञान, अन्धकार से प्रकाश, मृत्यु से अमृतत्व, पाप से पुण्य, शरीर से आत्मा और प्रकृति से परमात्मा की ओर चलने का प्रेरणा पर्व है। आज बहिर्जगत में रोशनी, चमक, दमक, भौतिक उन्नति प्रगति, सुख साधन आदि तेजी से बढ़ रहे हैं। अन्तर्जगत में अन्धकार जड़ता, अशांति, असंतोष, इच्छाएं, वासनाएं, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार आदि का अंधेरा तेजी से बढ़ता जा रहा है। यह पर्व प्रतिवर्ष ज्ञान रूपी प्रकाश लाने व फैलाने का अमर सन्देश देने आता है। यदि जीवन जगत को सुखी, शान्त, संतुष्ट और सर्वे भवन्तु सुखिनः बनाना है तो सत्ज्ञान की आंखें खोलकर जीओ व चलो। तभी संसार में विश्व शांति, विश्वबन्धुत्व तथा विश्वमानवता की बृष्टि, विचार एवं भावना आ सकेगी।

दीपावली का पर्व आर्य समाज के इतिहास में प्रेरक स्मरणीय एवं महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह पर्व आजीवन विषपायी ऋषिवर देवदयानन्द के निर्वाणोत्सव की अमरबेला की पुण्यतिथि है। इसी दिन उन्होंने अपना पंच भौतिक नश्वर शरीर छोड़ा था। ऋषि के तप, त्याग, तपस्या, सेवा उपकारों योगदान आदि के प्रति कृतज्ञता, स्मरण एवं श्रद्धांजलि देने का स्मृति दिवस है। युगों के बाद वरदान रूप में प्राप्त महापुरुष के नश्वर शरीर के त्याग की विदा बेला है। वह देव पुरुष जाते–जाते भी असंख्य ज्ञान दीप जला गया। न जाने कितनों को जीवन दृष्टि दे गया। उसी मुक्तात्मा की अमर कहानी दीवाली हर वर्ष दुहराने आती है। ऐसी देवात्माएँ दुनिया में कभी–कभी आती है। प्रभु की इच्छा से आती है और उसी की इच्छा में अपनी इच्छा को पूर्ण मानकर विदा हो जाती है। ऋषिवर का जीवन भी निराला था और दीवाली भी निराली थी। ये प्रेरक पंक्तियां सत्य हैं :–

सदियों तक इतिहास न समझ सकेगा,
तुम मानव थे या मानवता के महाकाव्य।

आर्य समाज ऋषि का जीवन्त स्मारक है। ऋषि का समग्र जीवन दर्शन, मन्तव्य, विचार, सिद्धान्त, उद्देश्य, आदर्श आदि आर्य समाज को वसीयत, विरासत तथा परम्परा में मिलें। इन्हीं का प्रचार–प्रसार एवं पालन करना ही आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। जितना आर्य समाज की विचारधारा का प्रचार–प्रसार और अनुयायी बढ़ेंगे, उतने स्वामी दयानन्द अमर होंगे। आज हम आर्यों के समक्ष ऋषि दयानन्द, आर्य समाज और सिद्धान्तों की रक्षा व प्रचार का ज्वलन्त प्रश्न खड़ा हुआ है। यदि इस पर सब मिलकर गम्भीरता पूर्वक ईमानदारी, त्याग भाव, सेवाभाव आदि की दृष्टि से चिन्तन–मनन, क्रियान्वयन नहीं करेंगे तो इतिहास हमें क्षमा नहीं करेगा। यदि ऋषि को जीवित जागृत व अमर रखना है तो आर्य समाज को अपने सत्य स्वरूप को पहचानना होगा। ऋषि दयानन्द ने जीवन भर नाम, यश, सुख, आराम आदि के लिए न चाहा न मांगा और न संग्रह किया। कोई मठ, मंदिर, स्मारक गद्दी आदि नहीं बनाई। वे रातों में जागकर जीवन जगत में फैले हुए अज्ञान, अन्धकार, ढोंग, पाखण्ड, पाप, अधर्म, अन्धविश्वास आदि के लिए घण्टों करुणक्रन्दन किया करते थे। **हम रात को उठकर रोते हैं, जब सारा आलम सोता है।** यह पीड़ा ऋषि की थी। वह युग पुरुष सारा जीवन जहर पीता रहा, पत्थर सहता रहा,

गालियां विरोध सुनता रहा। बदले में संसार को दया और आनन्द लुटाता रहा। वह सत्य का पुजारी जीवन भर असत्य, अधर्म, गुरुडम मूर्तिपूजा अवतारवाद तथा वेद विरुद्ध बातों से अकेला लड़ता रहा, कभी गलत बातों से समझौता नहीं किया। सारे जीवन में कहीं भी चारित्रिक दुर्बलता, अर्थ व पद लोभ नहीं आने दिया। वह दिव्यात्मा हर पहलू से खरा ही उतरा। उनके कट्टर विरोधी आलोचक भी अन्दर से प्रशंसक ही रहे। वह देवपुरुष उनसठ साल के डेपुटेशन पर संसार में आया था। घोर अविद्या में डूबी मानव जाति को वेदपथ और सन्मार्ग दिखाकर चला गया। सच तो यह है कि दुनिया ने ऋषि को समझा, जाना और माना ही नहीं।

दीवाली पर समस्त आर्य समाज व ऋषि भक्त ऋषि की स्मृति को निर्वाणोत्सव के रूप में मनाते हैं। निर्वाण शब्द मुक्त होना, आगे बढ़ जाना और बुझ जाने के अर्थ में आता है। अजमेर के भिनाई भवन में अन्तिम समय में ऋषिवर शान्तभाव से लेटे थे। सूर्य अस्ताचल को बढ़ रहा था। वह महायोगी अनुभव कर रहा था। आज प्रयाण बेला है। पूछा आज कौन सा मास, पक्ष व दिन है? भक्त ने कहा आज कार्तिक मास की अमावस्या और दीवाली का पर्व है। पूरे शरीर पर भयंकर फफोले थे। फिर भी उनका मुख मण्डल शान्त व प्रसन्न था। सबको संगठित होकर प्रेमपूर्वक रहने का उपदेश दिया। थोड़ी देर बाद बोले सभी खिड़कियां दरवाजे खोल दो। प्रार्थना, मन्त्रपाठ किया। तीव्र स्वर से ओ३म् का उच्चारण करने लगे। शान्त भाव में मुख से उच्चरित होने लगा – हे दयामय सर्वशक्तिमान परमेश्वर। तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो। अद्भुत तेरी लीला है। यह कहकर लम्बी श्वास खींची और बाहर निकाल दी। प्रभु का प्यारा देवता अपनी इहलीला समाप्त कर प्रभु की शरण में चला गया। सभी भक्त जन असहाय होकर देखते रहे। पं. गुरुदत्त जी पहली बार ऋषि के दर्शन करने आये थे। ईश्वर पर उनकी दृढ़ आस्था नहीं थी। ऋषि की अन्तिम यात्रा के अपूर्व दृश्य को देखकर नास्तिक गुरुदत्त पक्के ईश्वर विश्वासी आस्तिक बन गये। उन्होंने सम्पूर्ण शेष जीवन ऋषि मिशन के लिए समर्पित कर दिया। जाते–जाते भी ऋषि गुरुदत्त जी को ईश्वर विश्वास का सन्देश दे गए। ऋषि का सम्पूर्ण जीवन प्रेरक व शिक्षाप्रद था, मृत्यु भी प्रेरक बनी। दीवाली पर प्रभु भक्त योगी का विदा होना, सन्देश दे रहा है – वेद ज्ञान की ज्योति को जलाये रखना और आर्य समाज को आगे बढ़ाते रहना। संसार के इतिहास में मृत्युंजयी ऋषि ऐसे थे जो होश में तिथि पूछकर, स्नान प्रार्थना करके, प्रभु का स्मरण धन्यवाद करते हुए अपने विषदाता को क्षमादान देकर प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो कहते हुए गए। ऐसी अद्भुत, चमत्कारी प्रेरक मृत्यु निराले मुक्तात्मा को ही सौभाग्य से मिलती है। ऋषिवर! तुम धन्य हो। तुम्हारा तप, त्याग सेवा भरा आजीवन संघर्षपूर्ण इतिहास स्वर्णिम व प्रशंसनीय है। तुम्हारे उपकार व योगदान स्मरणीय एवं वन्दनीय है। तुमने न जाने कितने जीवन पथ में भटके हुए लोगों को नव जीवन दिया। तुमने भारतीय स्वर्णिम इतिहास के प्रेरक पृष्ठों को संसार के सामने रखा। जिसने तुम्हें देखा, सुना, पढ़ा और जो सम्पर्क में आया वह अमूल्य हीरा बन गया। तुम सत्य के अन्वेषक वक्ता, पुजारी, प्रचारक और अन्त में सत्य पर ही शहीद हो गए। तुम्हारा दूसरा पर्याय और कोई भी नहीं हुआ।

दीवाली ऋषि स्मृति पर्व है। उस महामानव के उपकारों, योगदानों, महत्त्व विशेषताओं आदि को स्मरण व कृतज्ञता प्रकट करने की पुण्य तिथि है। संकल्प लेने दुहराने और अपने सुधारने की मंगल बेला है। ऋषि भक्तों आर्यों! उठो! जागो आंखें खोलो। अपने स्वरूप को पहिचानों। अन्तस में ज्ञानदीप जलाओ। प्रतिवर्ष परम्परागत दीवाली आती है। हम आर्यजन भी ऋषि निर्वाणोत्सव मनाते हैं। मेला लगता है। भाषण होते है।, भीड़ बिखर जाती है। हम अपना कर्तव्य पूरा समझ लेते हैं। सोचो! क्या निर्वाणोत्सव की यही मूल चेतना, सन्देश व भावना है।? ये पर्व, जयंतियां उत्सव, वेद कथाएं, यज्ञ सम्मेलन आदि हमें जगाने, संभालने आत्मबोध व सत्यबोध कराने आते हैं। और दृष्टि, सोच, विचार व ज्ञान देते हैं। क्या खोया, क्या पाया। कहां के लिए चले थे, कहां जा रहे हैं? जिन उद्देश्यों, आदर्शों विचारों सिद्धान्तों व नवजागरण के लिए जीवन बलिदानी ऋषि ने आर्य समाज बनाया था? जो हमें कर्त्तव्य व जिम्मेदारी सौंपी थी। ऋषि श्रद्धांजलि और ज्योति पर्व हमसे पूछ रहा है। उन कार्यों के लिए हम क्या कर रहे हैं? क्या हमारा जीवन आर्यत्व पूर्ण है? कुछ नहीं किया तो कुछ करने का विचार संकल्प व व्रत लें। जब जाग जाओ, तभी सबेरा है। ऋषि भक्त आर्य समाज अनुयायी कहलाना है तो उनके बताए रास्ते पर चलो। यह ऋषि स्मृति का प्रकाश पर्व कह रहा है अपने अन्दर के व्यर्थ के अहंकार स्वार्थ ईर्ष्या, द्वेष पद प्रतिष्ठा आदि के अज्ञान को ज्ञान विचार विवेक से हटाओ, मूल में भूल हो रही है। व्यर्थ के विवादों झगड़ों समस्याओं आदि में समय शक्ति धन व सोच को मत लगाओ। आर्य समाज के पास बहुत बड़ी विचार सम्पदा है। उसको संभालों। तभी ऋषि निर्वाणोत्सव की सार्थकता, उपयोगिता तथा सच्ची ऋषि श्रद्धांजलि होगी।

स्वामी दयानन्द मेरे गुरु थे

स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं। संसार में मैंने सिर्फ उन्हें ही अपना गुरु माना है। आर्यसमाज मेरी माता है। इन दोनों की गोद में मैं खेला हूँ। मेरा हृदय और मस्तक दोनों को उन्होंने घड़ा है। मेरे गुरु एक महान् स्वतन्त्र मनुष्य थे, इसका मुझे अभिमान है। उन्होंने मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना सिखाया। ......मेरे जीवन में जो हिस्सा खराब है वह मेरा अपना है। वह या तो मुझको विरासत में मिला है या मेरे पूर्व जन्म के संस्कारों का फल है। लेकिन मेरे जीवन का जो हिस्सा अच्छा और लोगों में प्रशंसा योग्य है, वह सब आर्यसमाज की बदौलत है। आर्यसमाज ने मुझे वैदिक धर्म से प्यार करना सिखलाया, आर्यसमाज ने मुझे प्राचीन आर्य सभ्यता का मान सिखलाया। आर्यसमाज ने प्राचीन आर्यों से मेरा सम्बन्ध जोड़ा और मुझे उनका सेवक बनाया। आर्यसमाज ने मुझे जाति से प्यार करना सिखाया। आर्यसमाज ने मुझे कुर्बानी का मार्ग दिखलाया। आर्यसमाज ने मेरे अन्दर सत्य, धर्म और स्वतन्त्रता की रूह फूंकी। आर्यसमाज ने मुझे संगठन का पाठ पढ़ाया। आर्यसमाज ने शिक्षा दी कि समाज, धर्म और देश की सेवा करनी चाहिए और उसकी सेवा में जो मनुष्य बलिदान करता है और दुःख उठाता है उसे स्वर्ग का राज्य मिलता है।

मैंने सार्वजनिक सेवा में तमाम सबक आर्यसमाज में रहते हुए आर्यसमाज से सीखे। आर्यसमाज के क्षेत्र में मैंने अपने प्यारे मित्र बनाये। आर्यसमाज के क्षेत्र में ही मैंने सार्वजनिक जीवन की पवित्रता के नमूने देखे।

आर्यसमाज के उपकार मेरे ऊपर अनगिनत और असीम है। अगर मेरा बाल बाल भी आर्यसमाज पर निछावर हो जाय तो भी मैं उन उपकारों से उऋण नहीं हो सकता।

यदि मैं आर्यसमाज में दाखिल न होता तो ईश्वर ही जाने क्या होता, मगर यह सच है कि मैं आज जो कुछ हूँ वह न होता।

- लाला लाजपतराय

''महर्षि दयानन्द–आर्यसमाज और हिन्दी''

- पं० शिवकरण दुबे 'वेदराही'

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द मात्र एक वैदिक ऋषि ही नहीं थे अपितु एक प्रखर राष्ट्रवादी चिंतक एवं राष्ट्र निर्माता थे। जहाँ उन्होंने धार्मिक, आध्यात्मिक तथा समाज सुधार के क्षेत्र में अपनी दिव्य दृष्टि का आलोक बिखेरा वहीं राष्ट्रीयता के सभी मूल तत्वों को संगठित तथा क्रियान्वित करने का अथक प्रयत्न किया। भाषा, संस्कृति की एकता उनके क्रांति का मूलाधार थी। उनका मानना था "एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाये बिना भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति का होना दुष्कर है। सब उन्नतियों का स्थान ऐक्य (राष्ट्रीय एकता) है। जहाँ भाषा, भाव में एकता आ जाए, वहाँ सागर में नदियों की भाँति सारे सुख एक–एक करके प्रवेश करने लगते हैं।" उन्होंने राष्ट्र जागरण के लिए देश की भाषाओं का महत्व जानकर कलकत्ता प्रवास के समय बंगाली केशव चन्द सेन के सुझाव पर हिन्दी भाषा को अपने सम्प्रेषण का आधार बनाया क्योंकि हिन्दी एक जनभाषा के साथ–साथ साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हो चुकी थी। उन्होंने इस तथ्य को समझा कि समूचे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने के लिए लोक प्रचलित हिन्दी भाषा ही उपयुक्त होगी। उन्होंने सन् १८७५ में आर्यसमाज की स्थापना की और आर्यजनों को नागरी में पत्राचार और लेखन की प्रेरणा दी। स्वयं उन्होंने गुजराती और संस्कृत का लोभ छोड़कर अपना ग्रंथ 'सत्यार्थप्रकाश' हिन्दी में लिखा। उस युग में स्वामी दयानन्द का हिन्दी में गद्यात्मक ग्रंथ लिखना, वेद भाष्य करना तथा हिन्दी में प्रवचन करना ऐतिहासिक दृष्टि से युगान्तरकारी था। अहिंदी भाषी होते हुए भी स्वामी जी ने हिन्दी को सम्पूर्ण देश की भाषा बनाने का क्रियात्मक प्रयास किया। स्वामी जी ने अपने पूना प्रवचन में कहा था कि हिन्दी द्वारा समस्त विश्रृंखलित भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है, स्वामी जी हिन्दी को 'आर्य भाषा' कहते थे। लाहौर में समाज के संगठन के दौरान स्वामी जी ने एक उपनियम बनाकर सब आर्य समाजियों के लिए हिन्दी सीखना आवश्यक कर दिया था। सन् १८७४ में स्वामी जी को हिन्दी में प्रवचन करते देखकर श्री जवाहर दास जी ने, जो मथुरावासी थे, कहा कि स्वामी जी आपको तो संस्कृत में बोलना चाहिए' इस पर स्वामी जी ने उनको समझाया कि लोकभाषा में उपदेश देने से मनुष्यों का अधिक हित होता है। हरिद्वार में एक दिन स्वामी दयानन्द अपने आसन पर बैठे– कुछ समझा रहे थे, बीच में एक सज्जन ने निवेदन किया ''यदि आप अपनी पुस्तकों का अनुवाद कराकर फारसी में छपवा दें, तो पंजाब आदि प्रांतों में जो लोग नागरी अक्षर नहीं जानते उनको आर्य धर्म को जानने में बड़ी सुविधा हो जाय।'' इस पर स्वामी जी ने उत्तर दिया कि अनुवाद तो सिर्फ विदेशियों के लिए हुआ करता है नागरी अक्षर थोड़े ही दिनों में सीखे जा सकते हैं आर्य भाषा का सीखना कोई कठिन काम नहीं है। जो इस देश में उत्पन्न होकर अपनी भाषा सीखने में कुछ परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है। आप तो अनुवाद की सम्मति देते हैं परन्तु दयानन्द के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं कि जब कश्मीर से कन्याकुमारी तथा अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का ही प्रचार होगा। मैंने आर्यावर्त भर में भाषा का ऐक्य सम्पादन करने के लिए ही अपने सफल ग्रंथ आर्य भाषा में लिखे और प्रकाशित कराये हैं। स्वामी जी ने हिन्दी का स्वयं प्रयोग ही नहीं किया अपितु अपने सहयोगियों से वे हिन्दी में ही पत्राचार के लिए कहते थे। १४ अगस्त, १८८२ को दयानन्द स्वामी ने लाला कालीचरण जी को पत्र में लिखा कि आप लोग जहाँ तक हो सके आर्य भाषा को राज कार्य में प्रवृत्त कराने हेतु शीघ्र प्रयत्न कीजिए। स्वामी जी ने श्याम जी कृष्ण वर्मा को पत्र लिखा कि ''अंको को बांधकर नागरी में लिखाना''। इन उद्धरणों से स्वामी जी की हिन्दी के प्रति निष्ठा और दूरदर्शिता झलकती है। स्वामी जी के प्रयास का प्रतिफल था कि उनके परवर्ती खड़ी हिन्दी के जन्मदाता कहे जाने वाले भारतेन्दु ने हिन्दी के प्रचार–प्रसार का महान् कार्य किया। वे महर्षि के नवजागरण से प्रभावित थे तथा उनकी रचनाओं में सत्यार्थप्रकाश का भी सीधा असर दिखायी पड़ता था। हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है ''भारतेन्दु युग सामाजिक सुधारों तथा जन–जागरण का युग था। भारतेन्दु की रचनाओं में स्त्री शिक्षा, वर्ण भेद त्याग, अनमेल विवाह निषेध, आदि विषय मिलते हैं। ''भारत दुर्दशा'' नाटक में तत्कालीन सामाजिक दशा पर प्रकाश डाला गया है:–

''जाति अनेकन करी, नीच अरू ऊँच बनायो
खान-पान संबंध सबन सौं बरजि छुड़ायो''

हिन्दी के महत्व पर लिखा उनका दोहा अति प्रचलित है **''निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल''**। स्वामी जी से प्रेरणा प्राप्त कर अनेक परवर्ती महापुरुषों ने हिन्दी के प्रचार प्रसार को गति प्रदान की जिसके परिणाम स्वरूप सन् १९४६ को संविधान सभा ने हिन्दी को भारत संघ की 'राज भाषा' का दर्जा दिया। भारत सरकार (राज भाषा विभाग) की पत्रिका 'राज भाषा भारती'' के एक लेख में आचार्य क्षेमचन्द सुमन लिखते हैं ''स्वातन्त्र्य पूर्व पंजाब का तो हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में अप्रतिम योगदान था। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के द्वारा प्रवर्तित आर्यसमाज के सुधारवादी आन्दोलन के कारण वहाँ हिन्दी का जो प्रचार–प्रसार हुआ उसने वहाँ की जनता को हिन्दी लेखन की ओर प्रेरित किया। हिन्दी के प्रमुख कथाकार चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सुदर्शन, यशपाल, मोहन राकेश तथा श्रीमती रजनी पणिकर इसी प्रान्त की देन हैं।'' हिन्दी के मूर्धन्य पत्रकार श्री बाल मुकुन्द गुप्त, माधव प्रसाद मिश्र भी पंजाबी थे। महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने ''सत्धर्म प्रचारक'' नामक पत्र के माध्यम से हिन्दी भाषा की अभिवृद्धि में योगदान किया, वहीं गुरुकुल कांगड़ी जैसी संस्था ने हिन्दी के अनेक विद्वान् और पत्रकार दिए। गुरुकुल में प्रशिक्षित प्रो० इन्द्र देव विद्यावाचस्पति, सत्यव्रत सिद्धांतालंकार, भीमसेन विद्यालंकार, धर्मदेव विद्यामार्तण्ड तथा चन्द्रगुप्त वेदालंकार जैसे अनेक यशस्वी लेखक और पत्रकार आर्य समाज ने दिए। महात्मा हंसराज, लाला लाजपत राय तथा लाला देवराज की डी.ए.वी. कॉलेज, नेशनल कॉलेज आदि शिक्षण संस्थाओं का हिन्दी की अभिवृद्धि में प्रचुर योगदान था। देश के महान् स्वतंत्रता सेनानी गणेश शंकर विद्यार्थी ने सन् १९३० को गोरखपुर के अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के १९वें अधिवेशन के अध्यक्ष पद से बोलते हुए कहा था 'स्वामी दयानन्द, आर्य समाज और गुरुकुलों ने हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने में बड़ा काम किया'' (राजभाषा भारती)। आर्य जगत् के वयोवृद्ध क्रांतिकारी लेखक श्री संतराम बी०ए० जी के विचार उनकी जीवनी ''मेरे जीवन के अनुभव'' से उद्धृत है'' मेरे अन्दर राष्ट्रीय भावना जागृत हुई तो मैंने हिन्दी सीखी। इस विषय में मुझे महर्षि दयानन्द से प्रेरणा मिली है। मेरी धारणा है कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। यह समूचे राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँध सकती है।'' आर्य समाज की विचारधारा के प्रचार का माध्यम हिन्दी है।

शक्ति नगर, सोनभद्र (उ०प्र०)
दूरभाष : ०५४४६-२३४४७८

महर्षि दयानन्द

- आर.सी. प्रसाद सिंह

जब स्वदेशी शब्द दर्शन-योग्य केवल कोष में था
और हर पुरुषार्थ का अवसान चिर-संतोष में था
शान्त-शीतल हो चुकी थी जब तरुण-विद्रोह-ज्वाला
जब विदेशी राजसत्ता-कण्ठ में थी विजय-माला
दिव्य अपराजेय भारत-शक्ति ने तब जो पुकारा,
युग-प्रवर्त्तक, प्रथम निस्सन्देह वह स्वर था तुम्हारा।
साधना सम्पूर्ण युग की मूर्त्त पूंजीभूत होकर
आ गई मानो, तुम्हारे रूप में अवधूत होकर
कर गए आचार्य शंकर रिक्त जो इतिहास-काया
धर धुरी युग धर्म की तुमने उसे सार्थक बनाया
मुड़ चली सावेग आर्यावर्त की जो प्राण-धारा,
हे अमर ऋषि, जागरण-उद्घोष था उसमें तुम्हारा।
कर दिया तुमने प्रकाशित वेद को, चिर-लुप्त जो था
दे दिया अधिकार जन-जन को मनन का, गुप्त जो था
खण्ड कर पाखण्डियों को, पोप-लीला ध्वस्त कर दी
एक विद्युत्-शक्ति सारे देश में जीवन्त भर दी
आहिमाचल-सेतु जो गूंजा कभी उन्मुक्ति नारा,
क्रान्ति-कानन-केसरी, वह मेघ-गर्जन था तुम्हारा।
तुम पराजित जाति की नव चेतना के अग्र गायक
पद्-दलित अभिमान की प्रतिशोध-झंझा के विनायक
कुसंस्कारों से छिड़े संघर्ष के निर्द्वन्द्व योद्धा
रक्त की ऊर्जा अजय, तारुण्य के निर्भय पुरोधा
हो गया बलिदान पावन जो पतित का बन सहारा,
ब्रह्मचर्यानल-प्रदीपित वज्र-तन वह था तुम्हारा।
आर्य-संस्कृति और वैदिक सभ्यता के तुम विधाता
एक ईश्वर, एक धार्मिक ग्रंथ के शुचि मंत्र-दाता
काल-कर को तुम सुमण्डित कर गए कोदण्ड बनकर
जब भविष्यत् का चला आग्नेय शर मार्तण्ड बनकर
हिन्द, हिन्दी और हिन्दू जाति का चमका सितारा,
सर्वदा शुभ नाम उसमें है जुड़ा पहले तुम्हारा।
हे विमल स्वामी, परम तत्वज्ञ मुनि, ब्रह्मात्म-ज्ञानी
आर्य संन्यासी, सुधारक, गुरु दयानन्दाभिधानी
राजनीतिक दासता से मुक्त हैं भारत-निवासी
चेतना राष्ट्रीय लेकिन आज भी है देवदासी
स्वप्न भारत-भारती का है अधूरा ही हमारा,
देश के सिर पर चढ़ा है आज भी ऋषि, ऋण तुम्हारा।

भारत भाग्य विधाता महर्षि दयानन्द

— मनमोहन कुमार आर्य

आज ऋषि दयानन्द (1825–1883) का आंग्ल तिथि के अनुसार बलिदान दिवस वा पुण्य तिथि है। हिन्दी तिथि के अनुसार यह 7 नवम्बर, 2018 को है। ऋषि दयानन्द जी का बलिदान हुए पूरे 135 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस अवधि में उनके अनुयायियों एवं आर्य समाज ने जो कार्य किये हैं उसमें अनेक सफलतायें हैं और कुछ क्षेत्रों में हम कमजोर भी रहे हैं जिनका निवारण वा समाधान हम नहीं कर पा रहे हैं। ऋषि दयानन्द को हम इसलिये भी स्मरण करते हैं कि उन्होंने हमें असत्य का परिचय कराकर सत्य ज्ञान, सत्य सिद्धान्त व मान्यताओं व जीवन को श्रेष्ठ व सफल बनाने वाले कर्तव्यों व अनुष्ठानों से परिचित कराया था। एक बार उनके समय के भारत की स्थिति पर विचार कर लेना उचित होगा। प्रथम बात यह है कि ऋषि दयानन्द के कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने से पूर्व देश घोर अविद्या व अन्धविश्वासों से ग्रस्त था। ईश्वर व जीवात्मा के सत्य स्वरूप से वह अपरिचित हो गया था। जब ईश्वर का सत्य स्वरूप ही लोगों को पता नहीं था तो सत्य उपासना भी वह नहीं जान सकते थे। देश भर में अविद्या पर आधारित मिथ्या परम्परायें प्रचलित थीं जिनसे हमारा देश व समाज दिन प्रतिदिन निर्बल व रूग्ण हो रहा था। महर्षि दयानन्द के समय में देश अंग्रेजों का गुलाम था। इससे पूर्व यह यवनों वा मुसलमानों का गुलाम रहा। सबने इसका शोषण किया और अमानवीय अत्याचार करने के साथ धर्मान्तरण किया। इस गुलामी का कारण भी अविद्या ही मुख्य था। इस गुलामी क कारण वैदिक धर्म व संस्कृति मिट रही थी और ईसाईयत का प्रचार व प्रसार हो रहा था।

इन विपरीत परिस्थितियों में देश, धर्म और संस्कृति की रक्षा करने का दायित्व ऋषि दयानन्द ने अपने ऊपर लिया और प्रथम उपाय के रूप में वेद, धर्म और संस्कृति का प्रचार आरम्भ किया। वह असत्य व मिथ्या मत एवं उनकी मान्यताओं का खण्डन एवं विद्या की बातों, सत्य सिद्धान्तों एवं वैदिक मान्यताओं का मण्डन करते थे। हरिद्वार के कुम्भ के मेले में भी उन्होंने पाखण्डों का खण्डन किया था और हरिद्वार में पांखण्ड खण्डिनी पताका भी फहराई थी। पौराणिक नगरी काशी में जाकर उन्होंने वहां भी पाखण्ड एवं मूर्तिपूजा आदि मिथ्या अवैदिक मान्यताओं का खण्डन किया था। इससे मिथ्या मतों के आचार्यों में खलबली मच गई थी परन्तु सभी मिथ्या मतों के आचार्यों में इतनी योग्यता नहीं थी कि वह सत्य को स्वीकार करें अथवा ऋषि दयानन्द की मान्यताओं को असत्य व वेद विरुद्ध सिद्ध करें। इसका परिणाम सन् 16 नवम्बर, 1869 को मूर्ति पूजा पर शास्त्रार्थ के रूप में सम्मुख आया। पौराणिक आचार्यों के रूप में लगभग 30 से अधिक काशी के शीर्ष आचार्यों ने अकेले स्वामी दयानन्द जी से शास्त्रार्थ किया। यह सभी आचार्य मूर्तिपूजा, अवतारवाद आदि के समर्थन में वेद का कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सके। स्वामी दयानन्द जी का प्रचार जारी रहा। वह देश के अनेक राज्यों व उनके नगरों में जाकर वेदों का प्रचार करने लगे। सर्वत्र लोग उनके शिष्य बनने लगे। शिष्यों में अधिक संख्या पठित, शिक्षित व ज्ञानी लोगों की हुआ करती थी। **सन् 1875 के अप्रैल महीने की 10 तारीख को लोगों के आग्रह पर स्वामी दयानन्द जी ने मुम्बई नगरी के गिरिगांव मुहल्ले में आर्यसमाज की स्थापना की। आर्यसमाज की स्थापना का उद्देश्य वेद और वेदानुकूल सिद्धान्तों एवं मान्यताओं सहित वैदिक जीवन शैली का प्रचार तथा पाखण्ड एवं अन्धविश्वासों सहित मिथ्या व अवैदिक सामाजिक परम्पराओं का उन्मूलन करना था।**

स्वामी दयानन्द जी मनुष्यों के भोजन पर भी ध्यान देते थे। वह शुद्ध अन्न से बने शुद्ध भोजन को करने के ही समर्थक थे। मांसाहार, मदिरापान, अण्डे व मछली आदि का सेवन तथा धूम्रपान आदि को वह धर्म की दृष्टि से अनुचित तथा आत्मा को दूषित करने वाला मानते थे। देश को जातिवाद से मुक्त करने का भी स्वामी जी ने प्रयत्न किया। उन्होंने वैदिक काल में प्रचलित वैदिक वर्णव्यवस्था, जो गुण कर्म व स्वभाव पर आधारित थी, उसके सत्यस्वरूप को देश व समाज के सामने रखा। देश के पतन का मुख्य कारण अज्ञान व अन्धविश्वास ही थे। स्वामी जी ने अज्ञानता व अशिक्षा दूर करने के लिए गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का समर्थन किया और उस पर विस्तार से चिन्तन प्रस्तुत किया। इसी का परिणाम कालान्तर में गुरुकुल एवं दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज व स्कूलों की स्थापना के रूप में सामने आया। भारत के शिक्षा जगत में यह एक प्रकार की क्रान्ति थी। हमारे पौराणिक भाई नारी शिक्षा का विरोध करते थे। ऋषि दयानन्द ने नारी शिक्षा की वकालत की और बताया कि विवाह गुण, कर्म व स्वभाव की समानता से होता है। अतः नारी का भी पुरुष के समान शिक्षित व विदुषी होना आवश्यक

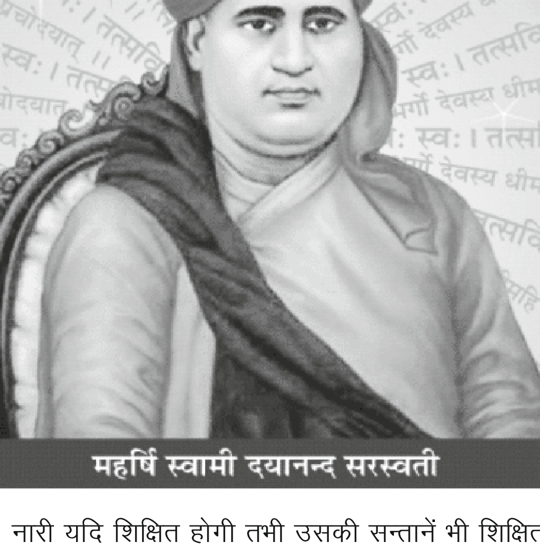
महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

है। नारी यदि शिक्षित होगी तभी उसकी सन्तानें भी शिक्षित व संस्कारित हो सकेंगी। समाज ने ऋषि दयानन्द के इस विचार को अपनाया जिसका परिणाम हम आज देख रहे हैं कि शिक्षा जगत में नारियों की उपलब्धियाँ पुरुष वर्ग से अधिक देखने को मिलती है। स्वामी दयानन्द जी ने समाज सुधार का जो कार्य किया वह एकांगी न होकर सर्वांगीण था। स्वामी दयानन्द नारी को संस्कारित कर वेद विदुषी बनाना चाहते थे। बहुत सी नारियां वेद विदुषी बनी और आज भी गुरुकुलों का संचालन कर रही हैं। इसके विपरीत पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति के प्रभाव में विवेक के अभाव में बहुत सी नारियों ने भारतीयता की उपेक्षा कर पाश्चात्य नारी के स्वरूप को ग्रहण कर लिया जहां मनुष्य की भौतिक उन्नति तो कुछ–कुछ होती दिखाई देती हैं परन्तु आध्यात्मिक उन्नति प्रायः शून्य ही होती है जिसका परिणाम जन्म जन्मान्तरों में दुःख के सिवा कुछ होता नहीं है। यह भी बता दें कि स्वामी दयानन्द जी और उनके अनुयायियों वा आर्य समाज ने जन्मना जातिवाद को समाप्त करने के क्षेत्र सहित दलितोद्धार का भी महान कार्य किया है।

अज्ञान व अन्धविश्वास सहित पाखण्डों का खण्डन करते हुए स्वामी दयानन्द जी ने मूर्तिपूजा, अवतारवाद, जन्मना जातिवाद, फलित ज्योतिष, मृतक श्राद्ध, अज्ञान व अविद्या के सभी कार्यों का खण्डन किया। स्वामी जी ने विद्या का प्रचार व प्रसार करने के लिये सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ऋग्वेद–यजुर्वेद का संस्कृत–हिन्दी भाष्य, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया जिससे देश में अविद्या का प्रसार कम होकर विद्या का प्रसार न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी हुआ। स्वामी दयानन्द जी ने अविद्या को दूर करने व सर्वत्र वैदिक मान्यताओं के अनुसार समाज व परिवार बनाने के लिये आर्यसमाज की स्थापनाएँ कीं। सर्वत्र साप्ताहिक सत्संग होने लगे जहां प्रातः यज्ञ–अग्निहोत्र, ईश्वर भक्ति के गीत व भजन तथा विद्वानों के ईश्वर व जीवात्मा के स्वरूप का प्रचार, समाजोत्थान व देशोत्थान की प्रेरणा, मिथ्या मान्यताओं का खण्डन एवं सत्य सिद्धान्तों का मण्डन व प्रचार होता था। ऋषि दयानन्द ने पूरे विश्व को सर्वोत्तम व श्रेष्ठतम उपासना पद्धति भी दी है या यह कह सकते हैं कि वैदिक काल में योग की रीति से जो उपासना की जाती थी, उसका उन्होंने पुनरुद्धार किया। सन्ध्या में किन मन्त्रों से व किस विधि से उपासना की जाये, इस पर न केवल चारों वेदों के चुने हुए मन्त्रों से संकलित उपासना की विधि बताई अपितु अपने सभी ग्रन्थों में ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना पर व्यापक रूप से प्रकाश भी डाला।

आध्यात्म व सामाजिक जगत के उन्नयन व उत्कर्ष का ऐसा कोई कार्य व उपाय नहीं था जिसका उल्लेख स्वामी दयानन्द जी ने न किया हो व जिसको प्रचलित करने के लिए उन्होंने व उनके अनुयायियों ने कार्य न किया हो। स्वामी दयानन्द जी ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने स्वराज्य प्राप्ति का उद्घोष अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में किया था। ऐसा अनुमान है कि सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ के ग्यारहवें समुल्लास में अंग्रेजों का तीव्र शब्दों में विरोध ही उनकी मृत्यु के षड्यन्त्र का एक कारण बना था। इसकी विस्तार से चर्चा न कर हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वह सत्यार्थप्रकाश का आठवां समुल्लास व ग्यारहवें समुल्लास सहित आर्याभिविनय, संस्कृत वाक्य प्रबोध एवं व्यवहारभानु आदि सभी ग्रन्थों को पढ़ें। हिन्दी को देश की व्यवहार व राजकाज की भाषा बनाने और गोवध बन्द करने के लिये भी ऋषि दयानन्द ने अंग्रेजों की गुलामी के दिनों में अग्रणीय भूमिका निभाई थी। जिन दिनों ऋषि दयानन्द यह कार्य कर रहे थे तब गांधी जी बच्चे थे और अन्य बड़े राजनीतिक नेताओं का जन्म भी नहीं हुआ था। देश की आजादी के क्रान्तिकारी व अहिंसक आन्दोलनों में भाग लेने वालों में आर्यसमाज के अनुयायियों की संख्या सबसे अधिक थी। अंग्रेज भी इस तथ्य से परिचित थे और इसी कारण उन्होंने पटियाला के आर्यसमाज व अन्यत्र भी आर्यसमाज के सदस्यों के उत्पीड़न के कार्य किये। स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपत राय, भाई परमानन्द, राम प्रसाद बिस्मिल आदि ऋषि दयानन्द के समर्पित अनुयायी थे। देश से स्त्री व पुरुषों की अशिक्षा को दूर कर शिक्षा का प्रचार व प्रसार करने में आर्यसमाज की अग्रणीय एवं प्रमुख भूमिका रही है। स्वधर्म एवं स्वसंस्कृति के बोध एवं प्रचार में भी आर्यसमाज का योगदान प्रमुख एवं सर्वाधिक है। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहां स्वामी दयानन्द ने अपना बौद्धिक योगदान न किया हो। **स्वामी दयानन्द जी वस्तुतः विश्व गुरु थे। इसके साथ ही वह भारत के निर्माता और भाग्य विधाता भी सिद्ध होते हैं।**

आज ऋषि दयानन्द जी के बलिदान दिवस व पुण्य तिथि पर हम उनकी महान आत्मा को अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं। आज देश के सामने अनेक चुनौतियाँ हैं। वर्तमान की विपरीत परिस्थितियों में आर्यसमाज विघटन व दुर्बलता से ग्रस्त है। हम आर्यसमाज के सभी नेताओं से निवेदन करते हैं कि वह संगठन को मजबूत बनाने में अपना योगदान करें तथा आर्य समाज को तेजस्वी स्वरूप प्रदान करने में अपना सहयोग प्रदान करें।

— पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोनः09412985121

ओ३म्

केन्द्रीय आर्य युवक परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष
श्री अनिल आर्य के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में

भव्य संगीत संध्या

बुधवार, 14 नवम्बर 2018, सायं 5.00 से 7.30 बजे तक
आर्य समाज अमर कालोनी, लाजपत नगर–4, नई दिल्ली
गायक कलाकारः पं. लक्ष्मीकान्त कांडपाल

मुख्य अतिथिः
श्रीमती मीनाक्षी लेखी (संसद सदस्य)
डॉ. अशोक कुमार चौहान (संस्थापक अध्यक्ष, ऐमेटी विश्वविद्यालय)
डॉ. योगानन्द शास्त्री (पूर्व अध्यक्ष, दिल्ली विधान सभा)
श्री जयप्रकाश अग्रवाल (पूर्व संसद सदस्य)

आशीर्वादः
स्वामी आर्यवेश जी (प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली)

अध्यक्षताः
श्री जितेन्द्र डावर (प्रधान, आर्य समाज अमर कालोनी)

गरिमामयी उपस्थिति
श्री आनन्द चौहान, श्री दर्शन अग्निहोत्री, ठाकुर विक्रम सिंह जी, श्री राजीव कुमार परम
प्रि. अंजु महरोत्रा, श्री ओमप्रकाश यजुर्वेदी, श्री चत्तर सिंह नागर, प्रि. रमेश कुमारी भारद्वाज
श्री सुरेन्द्र कोहली, श्री रविदेव गुप्ता, श्रीमती गायत्री मीना, पं. मेघश्याम वेदालंकार
श्री रमेश गाडी, श्री राजेश मेहन्दीरत्ता, श्री विजय गुप्त, श्री ओम सपरा

प्रीतिभोजः रात्रि 7.30 बजे
प्रबंधक–सौरभ, अरुण, शिवम, वरुण, करुणा, सरस्वती

निवेदकः
महेन्द्र भाई (राष्ट्रीय महामन्त्री), सुशील आर्य (राष्ट्रीय मन्त्री), धर्मपाल आर्य (कोषाध्यक्ष), देवेन्द्र भगत (प्रेस सचिव), अर्चना पुष्करना (संयोजक), ओमप्रकाश छाबड़ा (मंत्री समाज), सुभाष आर्य (कोषाध्यक्ष समाज)

विरासत का पैगाम–

श्री महर्षि दयानन्द का देवत्व

–स्व० पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड (देवमुनि वानप्रस्थ)

ऋग्वेद ७–६६–१३ में एक मन्त्र आता है जिसमें देवों का लक्षण इन महत्त्वपूर्ण शब्दों में बताया गया है:–

ऋतावान ऋतजाता ऋतवृधो घोरासो अनृतद्विषः।'' अर्थात देव (ऋतावानः) सत्य का व्रत धारण करने वाले (ऋतजाताः) सत्य के कारण प्रसिद्ध (ऋतावृधः) सत्य को सदा बढ़ाने वाले–सत्य के समर्थक और (घोरासः अनृतद्विषः) असत्य वा झूठ के घोर द्वेषी–विरोधी, असत्य का प्रबल खंडन करने वाले होते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में 'सत्यमया उदेवाः (कौषीतकी ब्रा० २/८)' 'सत्य संहिता वै देवाः' (ऐत० १०६) विद्वांसो हि देवाः। (शतपथ ३, ७, ३, १०) इत्यादि वचन पाये जाते हैं, जिनमें सत्य निष्ठ विद्वानों को देव के नाम से पुकारा गया है किन्तु वेदों में सत्य के समर्थन के साथ असत्य का घोर खण्डन भी विद्वानों का कर्त्तव्य बताया गया है।

महर्षि दयानन्द पर वेदों के देवों का यह लक्षण पूर्णतया चरितार्थ होता है। इसी देवत्व से प्रेरित होकर महर्षि ने (सत्यार्थप्रकाश) लिखा; जिसकी प्रारम्भिक भूमिका में उन्होंने स्पष्ट कहा कि मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। इसलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्थित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहे।'' इत्यादि।

महर्षि दयानन्द के अनुयायी आर्यों के अन्दर यह सत्य के मण्डन और असत्य के खण्डन की भावना पहले जितनी प्रबल थी अब उतनी प्रबल नहीं प्रतीत होती। पुराने आर्य सत्य–सिद्धान्तों को जानने के लिए स्वाध्याय किया करते थे और असत्य के निराकरणार्थ मौखिक व लिखित शास्त्रार्थ आदि साधनों का आश्रय लेते थे जिससे पाखण्ड की अधिक वृद्धि न होने पाती थी और ऐसा करने में लोगों को भी भय वा संकोच होता था किन्तु अब एक तो आर्यों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति कम हो गयी है जिससे बहुत से लोगों को वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान ही नहीं है, जिनको है उनमें से बहुत कम के अन्दर यह योग्यता और लगन है कि वे असत्य और पाखण्ड का युक्तियुक्त खण्डन निर्भयता से कर सकें। इसका परिणाम यह हो रहा है कि देश विदेश में असत्य और पाखण्ड की वृद्धि होती जा रही है क्योंकि अब लोगों को आर्यसमाज जैसी संस्था का भय नहीं रहा जो निर्भयता से असत्य का खण्डन करेगी और आश्यकतानुसार शास्त्रार्थ के लिए ललकारने में भी संकोच न करेगी। कितनी ही पाठय तथा अन्य पुस्तकों तथा पत्रिकाओं में वेद, वैदिक धर्म, वैदिक–संस्कृति तथा प्राचीन शास्त्र विषयक अशुद्ध बातें लिखी जाती हैं और आर्य विद्वानों द्वारा उन पुस्तकों और लेखों की प्रायः उपेक्षा के कारण पाठकों और युवक वर्ग में भ्रम फैलता है। यह उचित ही है कि मतभेद होने पर भी कटु, कठोर और चुभने वाले अनुचित शब्दों का प्रयोग न किया जाए किन्तु युक्तियुक्त उचित प्रभावजनक शब्दों में सप्रमाण असत्य और पाखण्ड का निवारण भी आवश्यक कर्त्तव्य है चाहे वह कुछ अप्रिय भी लगे। अतः मैं सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के सर्व–सम्मति से गत ८ अक्टूबर १६६१ को नई देहली में निर्वाचित प्रधान के रूप में समस्त आर्य विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि वे युक्तियुक्त सप्रमाण, यथासंभव कोमल किन्तु स्वयं प्रभावजनक शब्दों द्वारा असत्य और पाखण्ड के खण्डन करने में संकोच न करें। असत्य का निराकरण भी देवत्व का एक आवश्यक अंग है।

मैं आर्यजगत् से हूँ निराश

–प्रणेता-दिवंगत शंकरसिंह वेदालंकार

मैंने देखा निज स्वार्थ हेतु कुछ नर समाज में घुस आये।
संस्कार रहे असुरों के हों पर बाहर सुर से दिखलाये।
लोगों ने उनको नेता माना, नेता स्वीकार किया।
अपना स्नेह अनमोल प्यार, उर का भी राग प्रदान किया।
पर समय–समय पर यही लोग करते आये हैं सर्वनाश।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।

वह दयानन्द का युग बीता जो था तीखे शूलों वाला।
सर्वत्र दुष्ट दानव दल था जीवित ही खा जाने वाला।
पर उस निर्भय संन्यासी ने आगे बढ़ करके काम किया।
पाखण्डों पर टूटा पवि–सा क्षणभर न कहीं आराम किया।
अब देख रहे उसके तप का उसके शिष्यों में पूर्ण ह्रास।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।

अब कहां रह गये लेखराम दिन–रात काम करने वाले।
इसके निमित्त जीने वाले इसके निमित्त मरने वाले।
वह श्रद्धानन्द महान् वीर गोली खाकर जो विदा हुआ।
बोला उससा कोई अब भी हा! इस समाज में उदित हुआ।
बलिदानों के उड़ते विमान खाली जाते यमलोक पास।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।

कितने ही आये चले गये शास्त्रार्थी श्रुतिवेत्ता न्यारे।
जिनके शोणित से दमक रहे हैं काम दीपकों से प्यारे।
अब तो केवल उदरम्भर हैं अपने ही घर भरने वाले।
अपने ही घर को स्वाहा कर सब शैत्य दूर करने वाले।
कुछ जले और कुछ रहे शेष कुछ का आसन्न समग्र नाश।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।

जब लाखों और करोड़ों के संस्थान चलाये जाते हैं।
जिनमें आर्यों के श्रम अर्जित सब द्रव्य लुटाये जाते हैं।
सम्पूर्ण शक्ति के स्वर्णकलश निर्मम पिघलाये जाते हैं।
फिर क्यों न वहां ऋषि के पक्के सद्भक्त बनाये जाते हैं।
धन अर्जन में दिन रात यत्न पर कामों में असफल प्रयास।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।

हो रहे शताब्दी समारोह सम्मेलन भी भारी–भारी।
जिनमें धन बहता पानी–सा कुछ दिन की होती उजियारी।
फिर वही ढाक के तीन पात फिर वही अमावस्या काली।
बोलते रहे ये अरुणचूड फिर भी न लखी रवि की लाली।
एकता भग्न विघटन का स्वर अब भी करता है अट्टहास।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।

अब भी समाज पाखण्डों में पलता है ठोकर खाता है।
जड़ अर्चा में दिन रात मग्न, परमेश भुलाता जाता है।
अब भी अन्याय अभाव यहां, अज्ञान समादर पाता है।
भ्रष्टों का भ्रष्टाचार सजग नित नूतन जाल बिछाता है।
पहले से तो अब लाख गुना होता है पद–पद पर विनाश।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।

जब राष्ट्र भूख की ज्वाला में धू–धू कर प्रतिपल जलता हो।
जब सूखे नर कंकालों का समुदाय सकष्ट बिलखता हो।
जब नंगे लुच्चे नारी का अपमान सब जगह करते हों।
जब दुग्धपान के स्थानों पर मदिरा के चषक ढरकते हों।
तब गत विरुदों के गायन का औचित्य कहां कैसा हुलास।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।

बोलो इतने साधन पाकर तुमने क्या नाम कमाया है।
कहने को कुछ भी कहो किन्तु सच है सब बना मिटाया है।
लो दयानन्द का नाम और निज पेट भरो अति इठलाओ।
पर उसके सब शुभ सपनों पर जब चाहो पानी फिरवाओ।
वे त्यागी राग विमुक्त और तुम पड़े हुए करते विलास।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।

कितने स्वर्णिम सिद्धान्त और कितने निकृष्ट तुम हुए आज।
दल–दल में दल–दल बना रहे रण करने को साजते साज।
तुम जो कहते करते न कभी झूठे हो सब पाखण्डी हो।
संगठन सूक्त पढ़ते प्रतिदिन पर फिर भी महाविखण्डी हो।
कथनी करनी में भेद बहुत फिर कैसे कोई करे आस।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।

सब ओर तमिस्त्रा छाई है युवको अब उठो तुम्ही जागो।
तुम बनो दोगलों के दुश्मन, उनके उर में गोली दागो।
विध्वस्त हो रहा है समाज अब धर्म धरा धंसती जाती।
दिन–दिन दुष्टों की नीति प्रबल अपना प्रभुत्व है उमगाती।
इनके फण कुचलो और करो मणिक समाज का शुचि विकास।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।

जिस ओर युवक चल पड़ते हैं उस ओर सिद्धि चल पड़ती है।
नवयुवकों के नवशोणित से यह धरती स्वर्ण उगलती है।
'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का होता जन–जन में नित्य नाद।
सब प्रगति पथ पर चलते हैं मिट जाता है। फैला विवाद।
छा जाता है पूरे जग में दिनमणि का मंगलमय प्रकाश।
मैं आर्य जगत् से हूँ निराश।।

दिवाःसूनुः दयानन्द

—स्व० पं० चमूपति 'एम०ए०'

स्वामी दयानन्द एक महान् आत्मा थे। उनके मन्तव्यानुसार परमात्मा कर्मों का शुभाशुभ फल देने में पूर्ण न्याय से काम लेता है। परन्तु उसकी दया का प्रकाश और प्रसार प्राणीमात्र के लिए होता है। सूर्य, पृथ्वी, तारे, वायु, जल तथा उसके अन्य प्रसादों का सभी प्राणी समान रूप से उपभोग करते हैं। यदि कोई–व्यक्ति इनसे विशेष रूप से लाभान्वित होता है तो इसका कारण उसके पूर्व का वर्तमान कर्म होते हैं। ये सब सम्मिलित प्रसाद परमात्मा की दया तथा निष्पक्षता के द्योतक होते हैं।

महर्षि दयानन्द ने परमात्मा की न्याय–व्यवस्था पर बड़ा बल दिया है। एक के बाद दूसरे सन्त ने भाग्य पर भरोसा रखने की शिक्षा दी। इस प्रकार की शिक्षाओं ने जहाँ एक ओर मनुष्य को कर्मण्यता और उद्योग से विमुख किया वहाँ दूसरी ओर दुष्कर्मियों की दुष्ट प्रवृत्तियों को भी प्रोत्साहित किया। बताया गया कि परमात्मा जिसे चाहे दंड दे सकता है और जिसे चाहे पुरस्कृत कर सकता है। वह चाहे तो पुण्य कर्मों के लिए दंडित और बुरे कर्मों के लिए पुरस्कृत कर सकता है। क्या इस प्रकार की धार्मिक शिक्षाओं में भलाई की कोई भावना निहित हो सकती है? परमात्मा के न्याय में निष्ठा रखने से मनुष्य कर्मण्य एवं भला बनता है और परमात्मा द्वारा मनमानी किए जाने की भावना से मनुष्य में समस्त प्रकार की बुराईयों के साथ परवशता की भावना का उदय होता है।

वेद में परमात्मा को पितृणां पितृतमः पिताओं का पिता, अम्बितमा माताओं की माता कहा है। पिता अपने पुत्रों में भी दया की तराजू को पकड़े रहता है। उनकी उदण्डता के लिए उन्हें दण्ड देता है। उनकी बुराइयों को दूर करने का यत्न करता है। अच्छे पुत्र के लिए वह प्रेम होता है। असीम पिता की दयालुता और प्रेम भी असीम ही होगा। इनकी वास्तविक अनुभूति उसके उन बच्चों को हो ही सकती है जिनके हृदयों में उसकी असीमता घर किए होगी। मनुष्यों अथवा परमात्मा के ऐसे बच्चों को वेद में **'अमृतस्य पुत्राः'** कहा गया है। इन बच्चों ने बुराई को पीछे छोड़ा होता है। वे कर्मठता और उत्साह की सजीव मूर्ति होते हैं। उनका जीवन कर्त्तव्य परायणता का जीवन होता है। परमात्मा की प्रसन्नता ही उनके कार्य का पारितोषिक होता है। उनका प्रभु–प्रेम स्वतः प्रवाहित रहता है। वे निष्काम भाव से परोपकार–रत रहते हैं। यदि परमात्मा के हाथों कष्ट मिलते हैं तो वे भी दया का रूप लिए होते हैं। उनका अभिप्राय आत्मा का सुधार ही होता है। दुनियादार व्यक्ति पारितोषिक की आशा में किसी गुण को धारण करेगा तो परमात्मविश्वासी पुत्र जिसे वेद में 'दिवाः सूनुः' कहा गया है सत्कर्म को परमात्मा के प्रति भेंट रूप में अर्पण रखेगा।

महर्षि दयानन्द इसी प्रकार का **'दिवाःसूनुः'** अर्थात् दिव्य पुत्र था जिसने अपना समस्त जीवन भेंट रूप में परमात्मा को अर्पण कर रखा था।

दयानन्द सच्चे अर्थ में सन्त थे। वह परम तपस्वी और त्यागी थे। वह परमात्मा के प्यारे थे। उनके हृदय में सदैव दिव्य धारा प्रवाहित रहती थी। उस धारा में उनके ऐहिक कष्टों और कठिनाइयों की गरज शान्त हो जाया करती थी। अपने जीवन को खतरे में डालकर भी वह जिन उच्च नैतिक आदर्शों पर आरूढ़ रहते थे वे उस उच्चधार्मिक और नैतिक व्यवस्था के अलौकिक ढाँचे के अविच्छिन्न अंग थे जिस पर विश्व का नियमन किया गया है और जिसे वह सदैव अपनी आन्तरिक आँखों से देखा करते थे। उन्हें वास्तविकता का भान हो जाया करता था। यास्क की परिभाषानुसार ऋषि वह होता है जो धर्म को देखता है। आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द इस सूत्र के ठीक–ठीक भाव में ऋषि थे।

यदि हम ऋषि भक्त हैं तो वेदज्ञान का दीप जलायें, पाखण्ड तिमिर को दूर भगायें

— डॉ. दिवाकर आचार्य

शारदीय नव संस्येष्टि पर्व दीपावली प्रकाश पर्व के रूप में मनाया जाता है। दीपावली महर्षि दयानन्द की पुण्य तिथि है। महर्षि के निर्वाण को 135 वर्ष हो गये महर्षि ने विश्व में फैले विकट पाखण्ड को ध्वस्त करने के लिये अपना अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश हमारे हाथों में दिया था और संसार के समस्त साम्प्रदायिक अवैदिक मत पन्थों को उखाड़ फेंकने का अभियान चलाया था। परमात्मा ने वेदज्ञान का विराट सूर्य ज्ञान के प्रकाश के लिये विश्व की मानवता को दिया और उसके प्रचार प्रसार का काम भारत के ऋषि–मुनियों एव चक्रवर्ती सम्राटों को सौंपा। किन्तु महान खेद का विषय यह रहा कि आर्यों के आलस्य, प्रमाद एवं कलह के कारण वेद ज्ञान के उस प्रचण्ड सूर्य पर काली घटायें छाने लगी। जब तक वैदिक ज्ञान का प्रकाश भूमण्डल पर फैलता रहा विश्व में सुख शांति एवं प्रेम का पारावार बहता रहा। क्योंकि वेद का सन्देश था ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया'' वेद ने सन्देश दिया ''मित्रस्य चक्षुशा समीक्षामहे हम प्राणी मात्र को मित्र की दृष्टि से देखें। ''अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्, उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्'' यत्र विश्वम् भवत्येकनीडम्। जहाँ विश्व की मानवता के लिये संसार एक घोंसला है जहाँ सारे प्राणी प्रेम भाव से रहते थे। किन्तु वेदज्ञान के प्रकाश के अवरूद्ध हो जोने से मत–मतान्तरो के पाखण्ड का अंधेरा फैल गया। जो भारत में बाद में गहराता ही गया।

ईसायत, इस्लाम, यहूदी सम्प्रदाय, बौद्ध एवं जैन सम्प्रदाय और भारत का पौराणिक पाखण्डवाद जैसी न जाने कितनी अवैदिक मान्यताओं ने विश्व की मानवता को ईर्ष्या, द्वेष, कलह एवं युद्धो की विभीषिका में झोंक दिया। आतंकवाद एवं भ्रष्टाचार समाज की शांति और सौहार्द्र को भंग कर रहे हैं। आज विश्व बारूद के ढेर पर बैठा है। परमाणु अस्त्रों की होड़ ने मानवता के लिये भीषण खतरों की पृष्ठभूमि तैयार कर दी है। ये सब वैदिक ज्ञान के अभाव का ही परिणाम ही तो है महर्षि ने इसलिए कहा–

''मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य का निर्णय कराने के लिये है न कि वादविवाद और विरोध करने के लिये। इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत में जो जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और आगे होगें उसको पक्षपातरहित विद्धान जन जान सकते है।'' (सत्यार्थ प्रकाश–अनुभूमिका)

महर्षि के इस कथन की साक्षी के लिये विश्व इतिहास से भरा पड़ा है। आर्यों के पास कोई वैदिक धर्मी चक्रवर्ती शासक तो है नही जो इन घोर आतंकवादी स्वार्थी भ्रष्ट मत–मतान्तरों को रोक सके। अपने देश में ही पाखण्ड की कोई कमी नही है। सारे भारत को मानों पौराणिक पाखण्डवाद के झूठे किस्से कहानियों ने और मुक्ति दिलाने के झूठे प्रलोभनो ने जकड़ रखा है। करोड़ो मनुष्य गंगा स्नान से मुक्ति पाने के लिये कुम्भ के नाम पर भारत की नदियों के किनारे कल्पित झूठे तीर्थों पर इकट्ठे होकर हरिद्वार जैसे नगरों और गंगा जैसी पवित्र नदियों को प्रदूषित करते हैं। पाखण्डी पंडे पुजारियों की बड़ी चाँदी होती है क्या ये नरनारी जो गंगा में डुबकी लगाते है मुक्त हो जाते हैं ? कांवड़ का एक पाखण्ड देश के करोड़ो भोले भाले लोगो को बहकाकर कठोर परिश्रम कराता है। सड़को पर इतनी भीड़ होती है कि उत्तर पश्चिम भारत के कई नगर मेरठ मुजफ्फरनगर, मोदीनगर, मुरादनगर, गाजियाबाद आदि सप्ताह भर तक चलने फिरने को दुखी हो जाते हैं। भारत के लाखों मंदिरों में पत्थर के खिलौनो की पूजा होती है ये भोले भाले लोग भारतवासी इस विज्ञान के युग में भी नही समझ पाते कि पत्थर न खाता हैं और न पीता है। और भी ना जाने कितने पाखण्ड मूर्ति पूजा एवं अवतारवाद के कारण भारत में चल रहे हैं, और हम आंख बन्द किये हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। इस पाखण्ड से बड़े दुष्ट दुराचारी धर्माचार्यों का उदय होता रहा है, आशाराम 'बापू', राम रहीम और रामपाल तो इसके ताजे उदाहरण हैं। जब इन दुष्ट दुराचारियों के काले कारनामें खुलते हैं तो इनकी अन्धभक्त जनता ठगी सी रह जाती है। इनके काले कारनामे देखकर भी जनता इस पाखण्ड से विरत नहीं हो रही। क्योंकि घर में बचपन से पाखण्ड एवं मूर्ति पूजा के संस्कार बच्चों में डाल दिये जाते है। वेद में इस पाखण्ड के लिये कोई स्थान नहीं है। फिर हम क्यों इसका विरोध नहीं करते। इसका मूल कारण है हम स्वयं नास्तिक हैं और अकर्मणयता के जाल में फंसे हैं। हमारे बच्चों को न तो वैदिक संस्कार दिये जाते हैं और न हमारे घरों में वैदिक उपासना पद्धति संन्ध्या और यज्ञ की स्थापना हो पाई है। ऐसे लोगों में दूसरे जो कुछ धर्म के नाम पर करते रहे हैं उनसे कुछ कहने का साहस कैसे हो सकता है? मेरे अत्यन्त पूज्य मेरी पी. एच.डी. के निदेशक स्वामी धर्मानन्द सरस्वती ने सन् 1974 में हरिद्वार के कुम्भ मेले के समय कहा था कि ''देखो पौराणिकों में पोप लीला है और आर्य समाज में लोप लीला है''

यह पाखण्ड देश और दुनिया के लिये अत्यन्त घातक और मानवता के लिये दुखदायी है। क्योकि पाखण्ड ने सच्चे वैदिक धर्म की मान्यताओं को लुप्त कर दिया है। जहां वैदिक धर्म, साधना सदाचार, योग ध्यान एवं तप की बात करता है व्यक्ति को धर्म की शिक्षा देकर योगी एवं मुमुक्षु बनाता है वहां पौराणिक पाखण्डी कहता है कि तप सदाचार की आवश्यकता क्या है ? ''कलयुग केवल नाम अधारा'' अरे कलयुग में तो नाम जप से ही मुक्ति हो जाती है वह भी राम और कृष्ण का नाम जपने से। ज्यादा करो तो राधे राधे जप लो। मनुष्य को कितना दिग्भ्रान्त एवं पथ भ्रष्ट किया जाता है।

यह पाखण्ड सारे देश में बहुत गहरी जड़े जमा चुका है और वर्तमान सत्ता के सहारे और तेजी से बढ़ रहा है। एक दिन ऐसा आयेगा कि हम कहीं भी इस पाखण्ड के खिलाफ मुँह भी नही खोल पायेंगे। सार्वदेशिक सभा के पूर्व प्रधान एवं विश्व विख्यात संन्यासी स्वामी अग्निवेश जी के साथ जो हिन्दू मतावलम्बी पाखण्डियों ने किया वह क्या आपसे छिपा है? इसलिये सावधान होने की आवश्यकता है और पाखण्ड को जड़ से उखाड़ने के लिये कमर कसने की जरूरत है। महर्षि दयानन्द ने पाखण्ड के खण्डन के लिये हरिद्वार कुम्भ में पाखण्ड खण्डिनी पताका फहराई थी और 17 नवम्बर 1869 ई0 को पाखण्ड के गढ़, बनारस में शास्त्रार्थ कर पाखण्ड और पाखण्डियों का मानमर्दन किया था।

इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारत की जनता को इस घिनौने झूठे विषैले अधर्म एवं अपने ही श्री कृष्ण जैसे योगी महापुरुषों जैसे पूर्वजो के चरित्र को बिगाड़ने वाली श्रीमद् भागवत पुराण जैसी कथाओं को बन्द करें एवं वेद की कथाओं का प्रचलन करें।

– पूर्व उपकुलपति गुरूकुल विश्व विद्यालय वृन्दावन
शंकर विहार लाल कुँआ, गाजियाबाद
मो0 : 9911728170

आर्य समाज टाण्डा का 127वाँ वार्षिकोत्सव समारोह
दिनांक 20 से 23 नवम्बर, 2018 तक

आर्य समाज टाण्डा का 127वाँ वार्षिकोत्सव दिनांक 20 से 23 नवम्बर, 2018 तक डी.ए.वी. एकेडमी, टाण्डा, अम्बेडकरनगर, उत्तर प्रदेश में हर्षोल्लास के साथ मनाया जा रहा है। इस अवसर पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी आर्यवेश जी, आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय जी, डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री अमेठी, पं. दीनानाथ शास्त्री लखनऊ, आचार्य नागेन्द्र शास्त्री अयोध्या, डॉ. सारस्वत मोहन मनीषी (राष्ट्र कवि), पं. संजय सत्यार्थी पटना, श्री कल्याण वेदी भजनोपदेशक, श्री युगल किशोर शास्त्री भजनोपदेशक, स्वामी वीरेन्द्र सरस्वती लखनऊ, ब्र. दीक्षेन्द्र आर्य हरियाणा, आचार्य सत्य प्रकाश आर्य बाराबंकी, डॉ. विधानचन्द्र आर्य रामनगर, पं. विज्ञमित्र शास्त्री, पं. देव नारायण पाठक, आचार्य पूर्ण प्रकाश शास्त्री सहित अनेकों गणमान्य व्यक्ति पधार रहे हैं।

इस अवसर पर आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय के ब्रह्मत्व में चतुर्वेद महायज्ञ का भव्य आयोजन किया गया है। 20 नवम्बर को अपरान्ह 2.30 से 5 बजे तक विशाल शोभा यात्रा का आयोजन भी आकर्षण का केन्द्र रहेगा। इस अवसर पर आर्य युवा सम्मेलन, नारी सशक्तिकरण सम्मेलन, वेद सम्मेलन सहित अनेकों अन्य कार्यक्रम आयोजित किये गये। इस पुण्य अवसर पर सपरिवार इष्ट मित्रों, परिजनों व बन्धु–बांधवों सहित पधारकर धर्म लाभ उठायें।

निवेदक

आनन्द कुमार आर्य
प्रधान

योगेश कुमार आर्य
मंत्री

राम सूरत मौर्य
कोषाध्यक्ष

समारोह स्थल

डी.ए.वी. एकेडमी, टाण्डा अम्बेडकर नगर, उत्तर प्रदेश–224190
दूरभाष :– 05273–222276, 225299, मो.:–9331866618, 9415460200, 9452604560

पंजीयन संख्या DELMUL/2005/15488
डाक पंजीकरण संख्या DL(c)-01/1213/18-20
Licence to Post without prepayment of Postage. [U (c)-289/2018-20]

सोशल मीडिया के माध्यम से स्वामी आर्यवेश जी से जुड़ें

आर्य युवा सन्यासी व सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी आर्यवेश जी से जुड़ने के लिए इस लिंक पर क्लिक करें www-facebook-com/SwamiAryavesh व फेसबुक पेज को लाइक करें व अन्य मित्रों को भी प्रेरित करें।

ई–मेल : aryavesh@gmail.com
Tel. :-011-23274771

प्रतिष्ठा में :–

अवितरण की दशा में लौटाएँ –
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
"दयानन्द भवन" 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002

अजेय प्राण

वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवाः अजहुर्ये सखायः।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि।।
—ऋ:० ८/९६/७

ऋषिः—तिरश्चीर्द्युतानो वा मारुतः।। देवता—इन्द्रः।। छन्दः—विराट्त्रिष्टुप्।।

विनय—हे मेरे आत्मा! तेरे असली साथी तो प्राण ही हैं। जब तक प्राण तेरे साथी नहीं हो जाते तब तक अन्य देवों का साथ बेकार है, प्रत्युत समय पर धोखा देने वाला है। मैं जब उत्तम ग्रन्थ पढ़ता हूँ, सन्तों की वाणी सुनता हूँ, पवित्र उपदेश श्रवण करता हूँ तब मन में बड़े दिव्य, उत्तम विचार उत्पन्न होते हैं; आन्तरिक मनन और भावना से मन की अवस्था ऐसी ऊँची हो जाती है कि हृदय में मानो देवसमाज लग जाता है। मैं अपने को बिल्कुल निर्विकार, निष्काम और पवित्र समझने लगता हूँ, परन्तु पाप–प्रलोभन के आते ही यह सब–का–सब उलट जाता है, वृत्रासुर के सम्मुख आने पर इस सब देव–समाज में भग्गी पड़ जाती है, उसकी फुंकार से सब दिव्य विचार क्षण में उड़ जाते हैं, जरा–सी देर में हृदय में महाबली वृत्रासुर का राज्य जम जाता है। उस समय यह जानता हुआ भी कि मैं बुरा कर रहा हूँ, पाप कर रहा हूँ, पाप की ही ओर खिंचा चला जाता हूँ। मनुष्य इस अवस्था से कैसे पार हो? इसका एक ही उपाय है कि मनुष्य प्राणों की समता प्राप्त करे। प्राणों का सम होना ही प्राणों की (मरुतों की) आत्मा के साथ मैत्री होना है। आत्मा के साथ जुड़ने पर, आत्मा के समीप होने पर प्राण सम और शान्त हो जाते हैं। ये सम हुए प्राण कार्य करने के बड़े, एकल साधन बन जाते हैं। प्राण की सम अवस्था में जो विचार होते हैं, वे स्थिर और दृढ़ होते हैं; इस अवस्था में किये गये संकल्प बड़ा विस्तृत प्रभाव रखते हैं। आत्मशक्ति जब प्राणों को आत्मगृहीत करके उन द्वारा प्रकट होती है तो उसके सामने कोई नहीं ठहर सकता, सब वासनाएँ दब जाती हैं, कोई भी पाप–विचार सिर ऊपर नहीं उठा सकता। बड़े–बड़े प्रलोभन, पाप की बड़ी–बड़ी फौजें आत्मा के एक संकल्प के द्वारा दब जाती हैं, समाप्त हो जाती हैं। आत्माग्नि की एक लपट में भस्म हो जाती है, जब वह आत्म–संकल्प सम हुए, सखा बने हुए प्राणों द्वारा प्रकट होता है और जब आत्माग्नि प्राणमाध्यम द्वारा सहस्त्र–गुणित होकर जल उठती हैं। प्राणों की इस मैत्री को, दोस्ती को पाकर आत्मा क्या नहीं कर सकता? प्राण महाबली है। वह जब तक असम रहता है तब तक उसका बल वृत्रासुर के काम आता है, परन्तु जब वह सम हो जाता है तो वह आत्मा का हो जाता है। आत्मा का सखा प्राण अजेय है।

शब्दार्थ—**इन्द्र**=हे आत्मन्! **विश्वे देवाः**=सब देव, सब दिव्यभाव **ये सखायः**=जो तेरे साथी बनते हैं **वृत्रस्य श्वसथात्**=पापासुर के सांस से, फुंकार से, बल–प्रदर्शन से **ईषमाणाः**=डरकर भागते हुए **त्वा**=तुझे **अजहुः**=छोड़ देते हैं। हे इन्द्र! **ते सख्यम्**=तेरी मैत्री, तेरा साथ **मरुद्भिः**=प्राणों के साथ **अस्तु**=यदि होता है या हो **अथ**=तो तू **इमाः विश्वाः पृतनाः**=पाप की इस सब बड़ी फौज को **जयासि**=जीत लेता है।

साभार- 'वैदिक विनय' से
आचार्य अभयदेव विद्यालंकार

।।ओ३म्।।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा
25 हजार वेद सैट प्रकाशित करने की महत्त्वाकांक्षी योजना

घर–घर तक पहुँचाई जायेगी परमात्मा की वेद वाणी

चारों वेदों का सम्पूर्ण हिन्दी भाष्य

लागत मूल्य 4100/- रुपये

(महर्षि दयानन्द, तुलसीराम स्वामी एवं पं. क्षेमकरण दास कृत)

(10 खण्ड, 9 जिल्दों में)

भारी छूट पर उपलब्ध

4100/– रुपये का एक वेद सैट 25 प्रतिशत की छूट पर उपलब्ध है

10 अथवा उससे अधिक वेद सैट लेने पर 30 प्रतिशत की छूट दी जायेगी

प्रत्येक आर्य समाज, स्कूलों के पुस्तकालयों, वाचनालयों तथा प्रत्येक घर में परमात्मा की वाणी वेदों का होना आवश्यक है। अधिक से अधिक संख्या में अग्रिम आदेश भेजकर भारी छूट का लाभ उठायें। डाक व्यय 200/- रुपये अलग से देना होगा। प्रारम्भिक स्तर पर 25 हजार वेद सैट प्रकाशित करने की योजना क्रियान्वित की जायेगी।

अपना आदेश '**सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा**' के नाम चैक/बैंक ड्राफ्ट द्वारा ''दयानन्द भवन'' 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–2 के पते पर अग्रिम भेजकर अपना वेदों का सैट बुक करा सकते हैं।

–: प्रकाशक :–

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, ''दयानन्द भवन'' 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002

प्रो० विट्ठलराव आर्य, सभा मंत्री, प्रकाशक व मुद्रक द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, 3/5 महर्षि दयानन्द भवन, (रामलीला मैदान/आसफ अली रोड), नई दिल्ली-110002 के लिए प्रकाशित तथा ज्योति प्रिंटिंग प्रेस, ई-94, सैक्टर-6, नोएडा-201301 से प्रकाशित एवं मुद्रित। (फोन : 011-23274771, 23260985 टेलीफैक्स : 23274216)
सम्पादक : प्रो० विट्ठलराव आर्य (सभा मन्त्री) मो.:0-9849560691, 0-9013251500 ई-मेल : sarvadeshik@yahoo.co.in, sarvadeshikarya@gmail.com वैबसाइट : www.vedicaryasamaj.com

वैदिक सार्वदेशिक साप्ताहिक में छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक या सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की सैद्धान्तिक मतैक्यता होना अनिवार्य नहीं है।